शैक्षिक
संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-36, फरवरी-मार्च 2001

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com
eklavyahoshangabad@bigfoot.com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुख्यपृष्ठ: मकड़ी के जाले पर ओस की बूंदें। जाड़े की सुबह अक्सर मकड़ी का जाला इन ओस की बूंदों की वजह से मोतियों की लड़ियों की तरह चमकता नज़र आता है। एकदम गोल-गोल बूंदें और वे भी एक-दूसरे से लगभग बराबरी की दूरी पर जमी हुई। इतने व्यवस्थित रूप से टंगे क्यों होते हैं ये ओस के मोती? फोटो – युवराज गुर्जर, ठाणे, महाराष्ट्र। (इस विषय पर विस्तृत लेख पृष्ठ 93 पर)

पिछला कवर: छद्मावरण यानी केमोफ्लेज का एक नमूना। पेड़ के तने पर बैठा हुआ यह पीला मेंढक बहुत गौर से देखने पर या फिर फुदकने पर ही दिखाई देगा। कई जीव-जंतु रहने के लिए या फिर खतरे के समय अक्सर ऐसी जगहें चुनते हैं ताकि उनके शिकारी के हाथ लग जाने का खतरा कम हो जाए। बहुत से कीट, पतंगे, तितलियां आदि में यह छद्मावरण का गुण तो पाया ही जाता है, इस फोटो से पता चलता है कि मेंढक भी इसे अख्तियार करते हैं। फोटो – के. आर. शर्मा।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***मैन्स व्यू ऑफ द यूनिवर्स:*** *गेराल्ड इ. ट्यूबर; प्रकाशक: क्राउन पब्लिशर्स न्यूयॉर्क।* ***द ग्रेटेस्ट स्पीड:*** *एस. आर. फिलोनोविच; मीर पब्लिकेशन मास्को।* ***द क्वेस्ट फॉर लोंगिट्यूड:*** *विलियम जे. एच. एंडर्यूस; प्रकाशक: हार्वर्ड कॉलेज।* ***फिजिक्स फार ऐवरी किड;*** *जेनिस प्राट वॉन क्लेवछ प्रकाशक: जॉन विली एंड संस, न्यूयॉर्क।* ***आइंस्टीन्स मिरर;*** *टोनी हे एंड पेट्रिक वॉल्टरर्स; प्रकाशक: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।* ***एनिमल बीहेवियर;*** *जॉन एलकॉक; प्रकाशक: सिनाउर एसोसिएट, मैसाच्यूसेट।* ***इवेन्ट,मेटाफोर,मेमोरी चौरी-चौरा 1922-1992:*** *शाहीद अमीन; प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित

संदर्भ सदस्यता अभियान

'संदर्भ' की सार्थकता तभी तक है
जब तक उसे पढ़ने वाले हैं।

संदर्भ को आप बरसों से जानते हैं, पढ़ते हैं,
संदर्भ के लिए कुछ करने का मौका आपके पास है।
अपने आसपास के स्कूलों, कॉलेजों, शिक्षकों,
अपने मित्रों को संदर्भ के बारे मे जानकारी दीजिए।
उन्हे संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाइए।

यदि आप संदर्भ के लिए पांच वार्षिक सदस्य बनाते हैं तो एक साल तक संदर्भ आपको बतौर उपहार भेजी जाएगी। दस सदस्य बनें तो दो साल, पंद्रह बनें तो तीन साल तक।

बस आपको इतना ही करना है कि आपके द्वारा बनाए गए पांच सदस्यों का सदस्यता शुल्क, नाम एवं पते हमारे पास भेजिए।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। बैंक ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

ड्राफ्ट बनवाई या मनीऑर्डर का खर्च आप सदस्यता शुल्क में से काटकर शेष राशि भेज सकते हैं।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. 461001, फोनः 07574 - 53518
ई-मेलः eklavyahoshangabad@bigfoot.com

बृहस्पति के उपग्रह, देशांतर और 7

17वीं सदी में जब यूरोपीय देशों में अपने समुद्री व्यापार को बढ़ाने की होड़ लगी हुई थी तब वे सब एक खास समस्या से दो-चार हो रहे थे – वो थी बीच समुद्र में देशांतर का निर्धारण। देशांतर रेखाओं को पता करने की विधियां खोजते हुए खगोलविदों की नज़र बृहस्पति के उपग्रहों पर पड़ी और उन्होंने इससे देशांतर के निर्धारण का तरीका खोज निकाला।

उसी दौर में कुछ वैज्ञानिक प्रकाश की गति को लेकर खासे परेशान थे। सवाल था कि प्रकाश की गति 'अनंत' होती है या 'सीमित'। ओल्फ रोमर ने बृहस्पति के सबसे नज़दीकी उपग्रह को लगने वाले ग्रहण का अध्यनन करते हुए निष्कर्ष निकाला और साबित किया कि प्रकाश की गति अनंत नहीं है बल्कि उसे नापा जा सकता है। हालांकि उसने जो निर्धारण किया वह आज के निर्धारण से काफी कम था क्योंकि उस समय तक पृथ्वी की कक्षा का सटीक मान मालूम नहीं था।
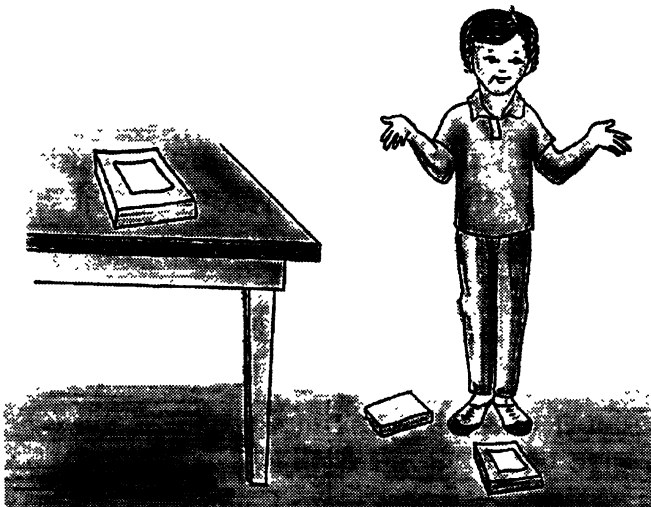
व्हाय टोस्ट लैंड्स जैली साइड 33

जैम, जैली या मक्खन लगा ब्रेड का स्लाइस यदि टेबल पर से नीचे गिर जाए तो अक्सर जैम लगी सतह ही ज़मीन को छूती है। आखिर ऐसा क्यों होता है? क्या यह महज एक संयोग है या इसके पीछे भी कोई विज्ञान का सिद्धांत है? इस पुस्तक के इस प्रश्न पर चर्चा करते एवं कुछ अन्य अंश।

कहानी चौरी-चौरा की..... 69

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को पढ़ते हुए स्कूली किताबों में चौरी-चौरा कांड का ज़िक्र ज़रूर मिल जाता है जिसमें उग्र भीड़ द्वारा पुलिस थाने को जलाने, पुलिस वालों के मारे जाने की घटना आदि का वर्णन होता है; साथ ही यह भी कि हिंसा की इस घटना की वजह से गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस लिया।

प्रस्तुत लेख में इस घटना की तह में जाकर उस समय की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के संदर्भ में इसे देखने की कोशिश की गई है – गांधीजी के विचारों में से लोगों ने क्या-क्या ग्रहण किया और क्यों? क्या गांधीजी ने केवल इस घटना की वजह से असहयोग आंदोलन वापस ले लिया? आदि पहलुओं को जानने की कोशिश भी की गई है।

मकड़ी के जाले में.... 93

कई बार बेहद साधारण-सा लगने वाला मकड़ी का जाला भी हैरत में डाल देता है। ठंड के दिनों में जाले में उलझी ओस की बूंदें प्रायः सबने देखी होंगी। अगली बार जब इन बूंदों को देखें तो अपने आप से यह सवाल ज़रूर कीजिए कि बूंदें जाले के सिर्फ जलेबी जैसे गोल धागों पर ही क्यों उलझती हैं?
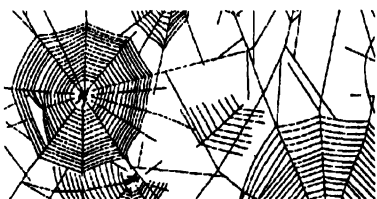
शैक्षिक संदर्भ

अंक: 36 फरवरी-मार्च 2001

इस अंक में

आपने लिखा 4

बृहस्पति के उपग्रह.... 7
माधव केलकर

श्रुतलेखन 18
कमलेशचंद्र जोशी

क्या इंसान भी 25
जे. बी. एस. हाल्डेन

व्हाय टोस्ट लैंड्स 33
प्रियदर्शिनी कर्वे

सवालीराम 41

दुनिया की सैर 43
ज्यूल्स वर्न

ज़रा सिर तो 58

कुछ ईंटें, कुछ प्रमेय 59
रामकृष्ण भट्टाचार्य

कहानी चौरी-चौरा की 69
गौतम पांडेय

इंडेक्स (अंक 31-36) 87

मकड़ी के जाले 93
अमोद कारखानिस

-आपने लिखा-

हालांकि अंक 34 का मुखपृष्ठ आकर्षक नहीं था फिर भी इस चित्र से संबंधित लेख 'सूरज पर धब्बे...' अपने आप में कुछ नया ज्ञान लिए हुए था। लेख पढ़कर ही पता चला कि किस तरह ब्रिटिश हुकूमत ने खुद को अकाल के दायित्व से बचा लिया।

कुछ समाचार पत्रों में मैंने पढ़ा कि सूर्य पर सौर्य तूफान आया हुआ है। इसके क्या प्रभाव होंगे मालूम नहीं।

'पक्षियों के विकास' संबंधी लेख पढ़कर मन में एक जिज्ञासा पैदा हुई कि अगर डायनोसौर जैसे विशालकाय जीव दौड़ते-दौड़ते पक्षियों में तब्दील हो गए; हालांकि यह विकास काफी धीमे-धीमे चला; तो क्या भविष्य में इंसान भी धीरे-धीरे अपना रूप-आकार बदल लेगा? (चाहे इसमें काफी समय लगे।)

पुस्तक समीक्षा में जिन तीन कहानियों की समीक्षाएं की गई थीं वे सोचने पर मजबूर करती हैं कि स्कूली पाठ्यक्रमों में जो कहानियां दी होती हैं वे कितनी बाल मनोविज्ञान के अनुरूप होने के साथ-साथ, कुछ नवीनता और कौतुहल लिए होती हैं? या उन कहानियों का निष्कर्ष छात्र थोड़ा-सा पढ़कर ही ज्ञात कर लेते हैं। मेरे विचार से हर बार शिक्षा देने के प्रयास से कहानी नहीं लिखी जानी चाहिए।

'80 दिन में दुनिया की सैर' में समझ में नहीं आया कि कहानीकार ने अपने एक पात्र का नाम अचानक 'पासपार्टआउट' क्यों कर दिया।

'बंगाल में इस्लाम' में रिचर्ड ईटन का यह लेख तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक परिवर्तनों की कशमकश भरी कहानी प्रस्तुत करता है।

पिछले कुछ अंकों से आपने अनारको को बिल्कुल भुला दिया है, कृपया उसे पुनः अवतरित करें। अगर संभव हो तो वर्ष में एक बार संदर्भ का कोई अतिरिक्त या विशेषांक प्रकाशित कीजिए।

रमेश जांगिड़
भिरानी, राजस्थान

मैं विज्ञान की और भी बहुत-सी पत्रिकाएं पढ़ता हूं। संदर्भ का अक्टूबर-नवंबर 2000 का अंक आपके पत्र सहित प्राप्त हुआ।

इस अंक में दिया गया लेख 'कांटों का घरौंदा' पढ़ा। यहां भी इस प्रकार का कीट पाया जाता है। यह इस प्रकार का घरौंदा चीड़ के पत्तों के डंठल व अन्य छोटी-छोटी लकड़ियों के टुकड़ों से भी बनाता है।

नंदा बल्लभ पंत
ग्राम सिल्ली, ज़िला अलमोड़ा, उत्तराखंड

आज अचानक रात में संदर्भ का 33 वां अंक (अगस्त-सितंबर 2000) हाथ लगा। वैसे तो मैं इसका नियमित

पाठक हूं और आज तक मैंने संदर्भ में लिखी कहानी या लेख पर कोई कटाक्ष नहीं किया। इस अंक में वंदना जी द्वारा 'अनारको और चोर अंकल' कहानी के बारे में कही गई साम्यवाद वाली बात कुछ हजम नहीं हुई। उनका कहना है, "कौन-सी विचारधारा अपना खाना पाने के लिए चोरी जैसा घृणित तरीका सुझाती है?" यदि वंदना जी इस बात को चोरी से हटाकर अपनी चीज़ पाने की लालसा पढ़तीं तो उन्हें कहानी का मतलब जान पड़ता। यह बात मेरी समझ से बाहर है कि जो कहानी एक सात-आठ साल की बच्ची पर है, जो सिर्फ एक कहानी है, उसमें साम्यवाद की बात लाना कहां तक उचित है। यदि उन्हें कहानी में साम्यवाद की बू आती है तो 'नारंगी का छिलका' (अंक 17, मई-जून 1997) जो कि मेरी प्रिय कहानी है उसके बारे में उनके विचार क्या होंगे?

संपादक जी से निवेदन है कि ऐसे लेख छापने से पहले यह जान लें कि लेखक की रुचि अपनी विचारधारा को शौहरत दिलवाना मात्र तो नहीं है?

बलदेव जुमनानी
होशंगाबाद

इसमें कोई शक नहीं कि यह पत्रिका उत्कृष्ट और स्तरीय पत्रिका है। टी. वी. वेंकटेश्वरन और कमलेशचंद्र जोशी के लेख काफी रोचक लगे। विज्ञान कथा से उस समय के भारत के बारे में जानकारी मिलती है। 'वे दौड़ते-दौड़ते उड़ने लगे' लेख पढ़कर लगा कि पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनना ही पड़ेगा।

देवांशु वत्स,
सुपौल, बिहार

संदर्भ में मुझे जो विशेष रुचिकर लगा, वह था ज्यूल्स वर्न की विज्ञान कथा का हिन्दी रुपांतरण। निश्चित रुप से विज्ञान कथाओं के प्रचार-प्रसार का आपका यह प्रयास सराहनीय है। विशेषकर अंग्रेज़ी साहित्य को हिन्दी पाठकों के लिए उपलब्ध करवा पाना एक जटिल काम है।

हिन्दी पाठक तथा लेखक वर्ग काफी जटिल किस्म का है। काफी लेखक विज्ञान कथाओं में फैंटेसी को एक ढाल की तरह प्रयोग करते हैं तथा अपनी इच्छित रचनाएं पाठकों पर थोपते हैं जिससे हिन्दी में विज्ञान कथाओं को समुचित महत्व नहीं दिया जाता।

स्वप्निल भारतीय
लखीमपुर खीरी, उ. प्र.

मैं आपकी शैक्षिक संदर्भ का नियमित पाठक हूं। मैंने अंक-34 अक्टूबर-नवंबर 2000 के 'ज़रा सिर तो खुजलाइए' में दिए गए सवाल 'दस दस सिक्कों की दस ढेरियां हैं........' का उत्तर उसी समय प्रेषित किया था जिसमें मैंने तीन बार तौलकर नकली सिक्कों वाली ढेरी का पता लगाया था तथा पूर्ण

हल का विवरण आपके पास भेजा था।

अभी मुझे अंक-35 प्राप्त हुआ जिसमें डॉ. प्रदीप दीक्षित ने एक बार में तौलकर ही नकली सिक्कों की ढेरी का पता लगाया है।

मैं संपादक मण्डल के निर्णय तथा प्रदीप जी के हल से सहमत नहीं हूं; क्योंकि प्रश्न में लिखा है कि आपको एक तराजू दी गई है, आपको बताना है कि कम-से-कम कितनी बार तौलकर आप नकली ढेरी का पता लगा सकते हैं? इससे पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि हमारे पास मात्र एक तराजू है, न कि बाट। यदि बाटों की सहायता से ही तौलकर बताना था तो आपने यह सवाल में स्पष्ट क्यों नहीं किया?

इस पत्रिका का प्रशंसक एवं पाठक होने के नाते मैं इस त्रुटि को चुनौती देता हूं। या तो यह प्रश्न गलत है या फिर उत्तर। प्रदीप जी ने आसानी से 385 ग्राम वज़न तराजू के एक पलड़े में रख लिया और सिक्के दूसरे में। और तौलकर हल भेज दिया तथा संपादक मंडल ने उसे छाप दिया। प्रदीप जी के पास दी गई शर्तानुसार, बाट तो थे ही नहीं फिर 385 ग्राम वज़न तौला कैसे?

आपसे विनम्र निवेदन है कि कृपया मुझे इसका हल भेजें जिसमें उपरोक्त मामला स्पष्ट किया हुआ हो। यदि आप मेरी प्रार्थना पर गौर नहीं फरमाएंगे तो आज से इस पत्रिका का एक पाठक कम हो जाएगा।

सुरेन्द्र शर्मा (प्राथमिक शिक्षक)
गांव ढ़ाबढ़ाणी, भिवानी, हरियाणा

सुरेन्द्र जी का तर्क अपनी जगह वाजिब है। यदि सवाल के साथ बाट की बात की होती तो हमारे कई पाठक बिना बाटवाले तरीके से हल खोजने की शायद ही कोशिश करते। हालांकि कई पाठकों ने बिना बाटों का इस्तेमाल किए चार बार, पांच बार या छह बार में नकली ढेरी मालूम करने वाले जवाब भेजे हैं।

सुरेन्द्र जी द्वारा प्रेषित जवाब में उन्होंने कोशिश बढ़िया की लेकिन वो दूसरे चरण में गड़बड़ा गए।

खैर यह सवाल अभी भी पाठकों के लिए खुला है। वे सिर्फ तराजू की मदद से (बिना बाटों का इस्तेमाल किए) कम-से-कम बार में नकली सिक्कों की ढेरी पता कर सकते हैं। हम इसके सही जवाब भी प्रकाशित करेंगे। — *संपादक मंडल*

बृहस्पति के उपग्रह, देशांतर रेखाएं और प्रकाश की गति

माधव केलकर

गैलीलियो की नोट बुक का एक पेज जिसमें उसने 28 नवंबर 1620 से बृहस्पति के उपग्रहों के अवलोकन लिखे थे।

16वीं और 17वीं सदी खासी उथल-पुथल वाली सदी रही है। ढेर सारी समुद्री यात्राएं, नए देशों की खोज, संसाधनों की लूट, उपनिवेशों की स्थापना आदि-आदि। इन सब के बीच वैज्ञानिक हलचल भी शायद उतनी ही तीव्र थी।

इस उथल-पुथल भरी दुनिया में कुछ लोग परेशान थे प्रकाश की गति को लेकर। उस समय तक यह तय नहीं हो सका था कि प्रकाश की गति की कोई 'सीमा है' या 'प्रकाश अनंत गति' से गमन करता है। उस दौर में उपलब्ध भौतिक उपकरणों की सीमाओं को देखते हुए इस विवाद या सवाल को सुलझाने के लिए तरह-तरह के प्रयोग सुझाए जा रहे थे, नाना प्रकार की परिकल्पनाएं प्रस्तुत की जा रही थीं। उस समय तक वैज्ञानिक पत्रिकाओं की शुरुआत अभी हुई नहीं थी इसलिए खोजबीन में जुटे वैज्ञानिक या तो एक-दूसरे से मिलकर चर्चाएं करते थे, अपने परिणाम एक-दूसरे से बांटते थे; या फिर पत्र व्यवहार के माध्यम से इस प्रकार का आदान-प्रदान करते थे। इसी तरह का पत्र व्यवहार सन् 1634 में मशहूर विचारक रेने देकार्ते और उसके डच वैज्ञानिक मित्र आइज़ैक बेकमेन के बीच प्रकाश की गति को लेकर चल रहा था।

गैलीलियो द्वारा सुझाए गए प्रयोग जैसा ही एक प्रयोग बेकमेन ने सुझाया था। एक आदमी एक बड़े आइने से काफी दूर, हाथ में एक लालटेन लेकर खड़ा हो जाए। अब वह लालटेन को हिलाए और आइने में लालटेन का प्रतिबिंब देखे। अगर उस व्यक्ति को अपने लालटेन हिलाने और आइने में प्रतिबिंब के हिलने के बीच समयांतर का आभास होता है तो इस बात का प्रमाण मिल जाएगा कि प्रकाश की गति की कोई सीमा पक्के तौर पर है।

बेकमेन का मानना था कि 250 कदमों की दूरी से हाथ की लालटेन हिलाने और आइने में लालटेन के हिलने के बीच दिल की दो धड़कनों जितना विलंब महसूस होना चाहिए।

इस संबंध में देकार्ते ने बेकमेन को लिखा, "तुम्हें इस प्रयोग पर इतना भरोसा था कि तुमने यह तक कह दिया कि अगर प्रयोग करने वाले को अपना हाथ हिलाने और दर्पण में प्रतिबिंब को हिलता देखने के बीच समयांतर नहीं महसूस हुआ तो तुम्हारी पढ़ाई का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा। जबकि मैंने, उसके विरुद्ध, कहा था कि अगर ऐसा समयांतर महसूस किया गया तो इससे मेरी पूरी पढ़ाई अर्थहीन हो जाएगी।"

बिना प्रयोग किए देकार्ते को इस प्रयोग के परिणाम के बारे में इतना विश्वास कैसे था। उसके खत से यह भी समझ में आता है, "उसके अगले

दिन इस विवाद को निपटाने के लिए और ताकि तुम इस पर अपना वक्त बर्बाद न करो, मैंने तुम्हें याद दिलाया कि एक और प्रयोग है जो बहुत से लोगों ने कई बार किया है और जिससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि किसी प्रकाशित पिंड से आंख तक पहुंचने में प्रकाश को कोई समय नहीं लगता......."

इस समय अंतराल की चर्चा करते हुए देकार्ते लिखते हैं, "तत्पश्चात मैंने कहा कि यह समय अंतराल जो तुम्हारे प्रयोग में महसूस नहीं हो सकता, मेरे द्वारा सुझाए प्रयोग में तो इसका पता चल ही जाएगा। अगर यह माना जाए कि चंद्रमा पृथ्वी से पृथ्वी की 50 त्रिज्याओं जितनी दूरी पर है. . . . तो गणनाएं दिखाती हैं कि प्रकाश को पृथ्वी और चंद्रमा के बीच की दुगनी दूरी तय करने के लिए कम-से-कम एक घंटे का समय लगेगा।"

देकार्ते का सुझाव था कि चंद्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण के द्वारा यह पता किया जा सकता है कि प्रकाश की गति 'अनंत' है या 'सीमाबद्ध' है। उसका कहना था कि ग्रहण की गणनाओं से यह पता चल जाता है कि ठीक किस समय धरती, सूरज और चांद के बीच में आएगी; और यदि प्रकाश की गति अनंत नहीं है तो आकाश में ग्रहण इन गणनाओं की तुलना में कुछ देर से दिखाई देगा। लेकिन उस समय तक ग्रहण को लेकर इस तरह का कोई विलंब देखने में नहीं आया था और इसीलिए देकार्ते ने यह माना कि प्रकाश की गति अनंत है।

हालांकि देकार्ते का विलंब वाला तर्क सही था लेकिन निष्कर्ष गलत। आज की तारीख में हम प्रकाश की गति जानते हैं इसलिए यह भी जानते हैं कि यह अंतर बेहद सूक्ष्म है, जिसे 17वीं सदी में महसूस कर पाना संभव नहीं था। लेकिन एक और मायने में देकार्ते सही निकला – प्रकाश की गति के विवाद के हल की खोज धरती पर किए जा रहे प्रयोगों से नहीं बल्कि खगोलीय प्रयोग शाला में करनी होगी। और यहीं से शुरू होता है हमारा आगे का किस्सा।

खगोलीय प्रयोग शाला और . . .

प्रकाश की गति की खोज की दूसरी कड़ी है बृहस्पति के उपग्रह। सन् 1610 में गैलीलियो ने अपनी दूरबीन से बृहस्पति ग्रह को देखा तो साथ में उसे कुछ और चमकीले पिंड दिखे जिन्हें उसने तारे समझा। अगली शाम से लगातार उसने कई दिन तक बृहस्पति का अवलोकन किया तो स्पष्ट हुआ कि उसने न केवल बृहस्पति को देखा है बल्कि साथ ही उसके चार उपग्रह भी हैं।

लगातार कुछ महीनों तक अवलोकन के बाद इनके नाम इवो, यूरोपा, गेनीमिड और केलिस्टो दिए

चित्र: 1
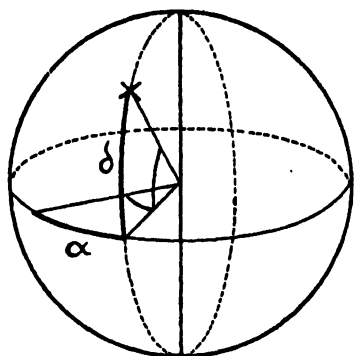
चित्र: 2

भूमध्य रेखा व किसी स्थान के बीच पृथ्वी के केन्द्र पर बनने वाला कोण उस स्थान का अक्षांश होता है। किसी भी जगह का अक्षांश पता करने के लिए ध्रुव तारे व क्षैतिज के बीच बनने वाले कोण को नापते हैं – जितना यह कोण, उतना ही उस स्थान का अक्षांश। ग्लोब पर उत्तर-दक्षिण ध्रुव के बीच प्रदर्शित रेखाएं देशांतर रेखाएं होती हैं। किसी स्थान विशेष का देशांतर उस जगह की शून्य डिग्री देशांतर से कोणीय दूरी दर्शाता है। चित्र-2 से स्पष्ट होता है कि ये दोनों पृथ्वी के केन्द्र पर बनने वाले कोणों को ही बता रहे हैं।

गए; बढ़ती दूरी के क्रम में यानी सबसे पास का इवो और सबसे दूरस्थ केलिस्टो। ये चारों उपग्रह बृहस्पति का एक चक्कर पूरा करने में क्रमशः 42.5, 85.3, 177.7 और 400.5 घंटे का समय लेते हैं।

.... देशांतर रेखाएं

एक बार हम फिर 16वीं और 17वीं सदी की ओर मुड़ें। यूरोप की सभी प्रमुख ताकतें एक प्रमुख सवाल से जूझ रही थीं, कि समुद्री यात्राओं के दौरान किसी स्थान के देशांतर का किस तरह पता लगाया जाए? 17वीं सदी के अंतिम हिस्से में 'विज्ञान' व्यवस्थित होने लगा था। पहले-पहली वैज्ञानिक पत्रिकाएं शुरू हो गई थीं। कई वैज्ञानिक संस्थानों की शुरुआती नींव रखी जा चुकी थी। साथ ही उन पर यह दबाव भी था कि उस समय की 'व्यावहारिक समस्याओं' का हल जल्द-से-जल्द खोजा जाए। बढ़ते समुद्री यातायात के कारण पृथ्वी पर कहीं भी अपनी स्थिति पता कर पाना उस समय की एक प्रमुख समस्या थी।

अक्षांश पता करने का तरीका तो

फिर भी आसान था और ईसा पूर्व तीसरी सदी से इस्तेमाल किया जाता रहा था। ठीक दोपहर को आसमान में सूरज की स्थिति नाप कर या रात में ध्रुव तारे की स्थिति पता करके। लेकिन देशांतर पता करना खासा कठिन काम था जबकि सिद्धांततः उसका हल भी मालूम था; देशांतर रेखाओं का संबंध स्थानीय समय से होता है और किसी जगह के स्थानीय समय और किसी विशेष देशांतर के समय में अंतर से उस जगह का देशांतर पता चल सकता है। परन्तु एकदम सही समय नापने वाले यंत्रों/घड़ियों के अभाव में यह तरीका बहुत भरोसेमंद नहीं रह जाता था।

तीन तरीके

17वीं सदी तक देशांतर मालूम करने की दो-तीन प्रमुख विधियां प्रचलन में थीं। पहली विधि में चुंबकीय सुई की मदद से भौगोलिक उत्तर से चुंबकीय उत्तर का विचलन कोण नापकर, और कई बार साथ ही चुंबकीय नमन कोण नापकर, देशांतर निकाले जाते थे। इसके लिए धरती की चुंबकीय बल रेखाओं का समुचित ज्ञान होना ज़रूरी था। परन्तु जब समझ में आने लगा कि धरती के चुंबकीय क्षेत्र में लगातार बदलाव होते रहते हैं, तो इस तरीके को त्याग दिया गया।
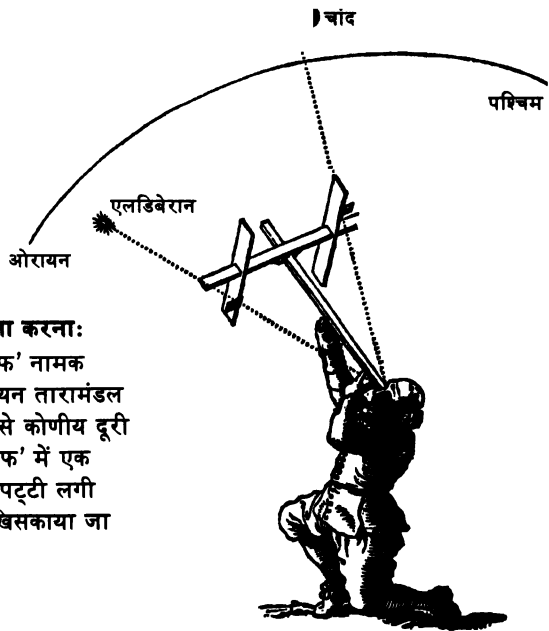
चांद और तारे की दूरी पता करना: एक खगोलविद 'जेकब स्टाफ' नामक उपकरण से चांद की ओरायन तारामंडल में स्थित एलडिबेरान तारे से कोणीय दूरी निकाल रहा है। 'जेकब स्टाफ' में एक लंबी पट्टी पर एक आड़ी पट्टी लगी होती है जिसे आगे-पीछे खिसकाया जा सकता है।

दूसरी विधि आकाशीय पिंडों की स्थितियों पर आधारित थी। किसी स्थान विशेष के देशांतर का समय मालूम हो तो उसकी स्थानीय समय से तुलना कर अपना देशांतर पता किया जा सकता है। देशांतर विशेष पर समय पता करने के लिए आकाशीय पिंड़ों में से चांद को चुना गया। चांद को लगने वाले ग्रहण का समय, चांद के पीछे किसी तारे के छुप जाने का समय या चांद की किसी तारे से कोणीय दूरी आदि घटनाएं समय पता करने के लिए इस्तेमाल की जाती थीं।यदि इन घटनाओं की अलग-अलग स्थान के हिसाब से एक विस्तृत सारणी बनाई जाए तो यात्रा के दौरान इस सारणी का इस्तेमाल करके समयांतर के आधार पर देशांतर मालूम किया जा सकता है। वैसे चांद के साथ पहली दो घटनाएं कभी-कभार ही होती हैं, इसलिए चांद से किसी निश्चित तारे की कोणीय दूरी को नापने वाली विधि ही ज़्यादा प्रचलित हुई। बृहस्पति के ग्रहों के ग्रहणों की सारणियों का उपयोग भी इसी तरह किया जाता था, खास करके ज़मीन पर स्थित किसी स्थान का देशांतर पता करने के लिए।

तीसरे तरीके में एक व्यक्ति जहाज़ की यात्रा प्रारंभ होने वाले स्थान के स्थानीय समय के अनुसार घड़ी को सेट करता है। जहां भी देशांतर पता करना हो वहां पर खगोलीय पिंडों के ज़रिए स्थानीय समय का निर्धारण किया जाता है; और फिर इन दोनों समय के अंतराल और शुरुआती स्थान के देशांतर के आधार पर नई जगह का देशांतर पता किया जा सकता है; यह जानते हुए कि किन्हीं भी दो देशांतर (यानी एक डिग्री) के बीच समय का अंतर चार मिनट का होता है। परन्तु तब तक समय मापने के यंत्र इतने विकसित नहीं थे कि इस तरीके का कारगर रूप से इस्तेमाल हो सके।

17वीं सदी में देशांतर ठीक-ठीक मालूम करना इतना महत्वपूर्ण बन गया था कि यूरोप के कई देशों ने सही देशांतर पता करने का तरीका ढूंढने के लिए ढेर सारे इनामों की घोषणा की थी। स्पेन, नीदरलैंड, फ्रांस और इंग्लैंड – हर देश ने इनाम घोषित किए थे। इंग्लैंड ने 20 हज़ार पौंड जैसी आकर्षक रकम बतौर इनाम रखी थी। इन इनामों की वजह से भी उस समय के कई वैज्ञानिक और कई सारे शौकिया लोग इस समस्या को सुलझाने की कोशिश में जुट गए थे।

कई लोग दोलक में सुधार कर समय मापने के बेहतर तरीके विकसित करने में लग गए, तो कइयों को विश्वास था कि इसका बेहतर हल खगोली पिंडों के अवलोकन से ही पता चल सकता है। इसी दौरान किसी ने सुझाया कि बृहस्पति के उपग्रहों का इस्तेमाल भी

देशांतर मालूम करने में किया जा सकता है। चारों उपग्रहों का अवलोकन करने पर पता चला कि बृहस्पति से सबसे पास का उपग्रह इवो लगभग 42.5 घंटे में बृहस्पति का एक चक्कर पूरा करता है। यह हर 42.5 घंटे बाद बृहस्पति के छाया क्षेत्र में प्रवेश करता है और धरती से दिखाई देना बंद हो जाता है, फिर कुछ समय के बा छाया क्षेत्र से बाहर निकल आता है और फिर से दिखाई देने लगता है; यानी इसे बहुत ही कम अंतराल में नियमित रूप से ग्रहण लगता है।

ग्रहण जैसी इस घटना को आधार बनाकर देशांतर पता करने की विधि विकसित करने के लिए ज़रूरी था कि एक ऐसी तालिका बनाई जाए जिसमें धरती के कई सारे इलाकों के लिए स्थानीय समय के अनुसार बृहस्पति के इस उपग्रह को ग्रहण लगने और छूटने की जानकारी दी गई हो। विस्तृत तालिकाएं बनाने के इस काम में पेरिस वेधशाला के दो वैज्ञानिक जीन पिकार्ड और जी. डी. कासिनी जुट गए। उन्हीं दिनों फ्रांस और डेनमार्क ने मिलकर काम करने का एक प्रोजेक्ट बनाया जिसमें 'इवो' के ग्रहण पर पेरिस के साथ-साथ डेनमार्क से भी नज़र रखने की योजना थी। इस प्रोजेक्ट के लिए पिकार्ड डेनमार्क चले आए। डेनमार्क में पिकार्ड को मदद के लिए ओल्फ रोमर नामक साथी मिला। डेनमार्क में काम करते हुए वे रोमर के काम से बेहद प्रभावित हुए और उसने रोमर को पेरिस चलने का न्यौता तक दे डाला।

अंतिम चरण

आखिरकार रोमर पेरिस आ पहुंचा और वहां वह भी बहुत सारे अन्य साथियों के साथ बृहस्पति के पहले उपग्रह इवो की ग्रहण सारणियां तैयार करने वाले प्रोजेक्ट में काम करने लगा। पेरिस वेधशाला के एक अन्य साथी फिलिप मराल्डी ने इस बात को महसूस किया कि कागज़ी गणनाओं और आकाश में उपग्रह के छाया में प्रवेश करने की नियमितता में थोड़ा फर्क है और ऐसे अंतर को 'इनइक्वालिटी' नाम दिया। उसका कहना था कि इस उपग्रह की कक्षा गोलाकार नहीं वरन् दीर्घवृत्ताकार है इस वजह से यह अंतर देखने में आ रहा है।

दूसरे अंतर के बारे में सन् 1675 में कासिनी ने सुझाया कि दूसरा फर्क संभवत: उपग्रह से हम तक प्रकाश आने में लगने वाले समय की वजह से हो सकता है। प्रकाश को धरती की कक्षा के अर्द्ध व्यास के बराबर दूरी तय करने में 10-11 मिनट का समय लगता है ऐसा उसका मानना था।

कासिनी द्वारा इतने साफतौर पर अपनी राय देने के बाद रोमर को आगे काम करने के लिए बचा ही क्या था? लेकिन न तो कासिनी ने अपनी
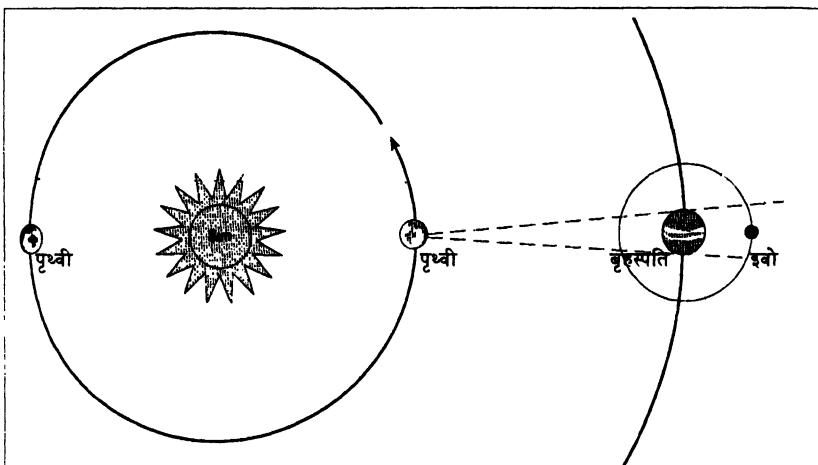
रोमर के पर्चे का अंश: "मैं बृहस्पति के पहले उपग्रह का पिछले आठ साल से अवलोकन कर रहा हूं। हर बार बृहस्पति की छाया में घुसने पर इसे ग्रहण लगता है। मैंने पाया है कि दो ग्रहणों के बीच का अंतराल बदलता रहता है। जब पृथ्वी अपनी कक्षा में घूमते हुए बृहस्पति के पास होती है तब अंतराल कम होता है और जब पृथ्वी बृहस्पति से अधिकतम दूरी पर होती है तो यह अंतराल भी अधिकतम होता है। इसका यही अर्थ निकलता है कि प्रकाश को अंतरिक्ष में से गुज़रने में समय लगता है।

प्रकाश की गति इतनी अधिक होगी कि पृथ्वी की बृहस्पति से निकटतम स्थिति की तुलना में, दूरस्थ स्थिति तक पहुंचने में उसे 22 मिनट अधिक लगते हैं। यानी कि प्रकाश को धरती से सूर्य तक की दूरी तय करने में लगभग दस मिनट लगते हैं; इसकी गति अनंत नहीं है जैसे कि माननीय देकार्ते का कहना है।"

परन्तु आज हम जानते हैं कि प्रकाश को सूर्य से धरती तक आने में लगभग 8 मिनट का समय लगता है, यानी पृथ्वी की कक्षा को पार करने में उसे 16 मिनट लगते हैं।

बात दमदार तरीके से रखी और न ही उसकी बात पर किसी का ध्यान गया। मज़ेदार बात तो यह है कि जब रोमर ने अपने अवलोकनों से इस बात की पुष्टि की तो कासिनी ने इस परिकल्पना को पूरे तौर पर ठुकरा दिया और अंत तक इस मसले पर रोमर का विरोध करता रहा।

रोमर ने अपने अवलोकनों पर आधारित एक पर्चा पेरिस की एक विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित किया। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद कुछ समय बाद सन् 1677 में लंदन से निकलने वाली पत्रिका 'फिलोसोफिकल ट्रांज़ेक्शन्स' में

प्रकाशित हुआ।

रोमर ने अभी तक प्रकाश की गति को लेकर कोई आंकड़ा प्रस्तुत नहीं किया था लेकिन उसने स्पष्टतः यह ज़रूर कहा कि प्रकाश की गति को नापा जा सकता है। रोमर का यह अनुमान था कि प्रकाश एक सेकेंड में एक धरती व्यास बराबर दूरी तय करता है। उसके अनुसार बृहस्पति के पहले उपग्रह को लगने वाले ग्रहण के बाद जब वह दुबारा ग्रहण वाली स्थिति में पहुंचता है तब तक धरती इतनी आगे बढ़ चुकी होती है कि प्रकाश को वहां तक पहुंचने में 3.5 मिनट की देरी लगनी चाहिए। लेकिन इवो के दो ग्रहणों के बीच गणना से आ रहे समय और
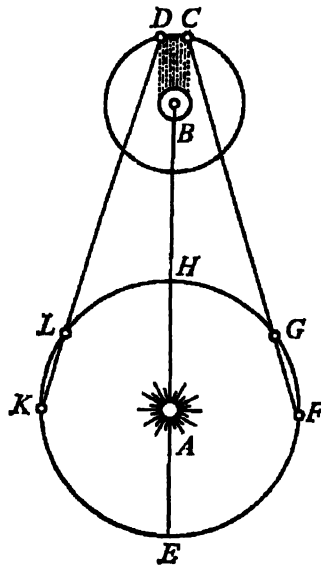
रोमर के पर्चे से चित्रः पृथ्वी 'एल' पर है जब बृहस्पति के उपग्रह 'इवो' का ग्रहण खत्म होता है और वह छाया में से 'डी' पर बाहर निकलता है। लगभग साढ़े बयालिस घंटे बाद उपग्रह को फिर से ग्रहण लगता है और जब वह छाया से बाहर निकलता है (बिंदु डी), तब तक पृथ्वी अपने कक्ष में आगे बढ़कर स्थान 'के' तक पहुंच चुकी होती है। अगर प्रकाश को 'एल-के' दूरी तय करने में समय लगता है तो 'के' से देखने पर उपग्रह को ग्रहण से बाहर निकलने अर्थात एक चक्कर पूरा कर स्थान 'डी' पर दुबारा पहुंचने में कुछ ज़्यादा समय लगता दिखेगा।

अवलोकन में कोई अंतर नहीं पाया गया। तब रोमर ने कहा कि ऐसा शायद इसलिए हो रहा है क्योंकि हम प्रकाश की गति का सही अंदाज़ नहीं लगा पाए हैं। और उसका कहना था कि भले ही दो ग्रहणों के बीच ऐसा अंतर नहीं दिख रहा परंतु कई बार ग्रहण लगने के बाद इसका अहसास करना ज़रूर संभव होगा।

यदि हम प्रकाश की गति के वास्तविक नाप पर न जाएं तो रोमर का यह काम काफी सराहनीय माना जाएगा क्योंकि यह पहला मौका था जब किसी ने प्रकाश की गति को अनंत न मानकर उसकी गति निर्धारण की सफल कोशिश की थी। प्रकाश की गति के लिए कोई स्पष्ट आंकड़ा न देने के पीछे प्रमुख कारण था कि उस समय तक धरती की कक्षा के व्यास का निर्धारण काफी हद तक स्थूल गणनाओं पर टिका हुआ था। उसने जो कहा था उसे अगर आज की जानकारी के आधार पर आंकड़ों में तब्दील करें तो उसके अनुसार प्रकाश की गति लगभग 2.14 लाख किलोमीटर प्रति सेकेंड थी।

कासिनी और पेरिस वेधशाला में मौजूद कासिनी के बहुत से रिश्तेदारों ने रोमर की इस व्याख्या को स्वीकार नहीं किया परंतु रोमर के इन अवलोकनों और व्याख्याओं को यूरोप की नामचीन हस्तियों ने सराहा जिनमें क्रिश्चियन हाइजेन, न्यूटन, जॉन फ्लेमस्टीड, जेम्स ब्रेडले, एडमंड हैली जैसे लोग शामिल थे। लेकिन पेरिस ऐकेडमी ऑफ साइंसेज़ चुप थी और कासिनी रोमर की व्याख्याओं को स्वीकार करने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं था। यह वही कासिनी था जिसने कुछ साल पहले फिलिप मराल्डी के अवलोकनों पर टिप्पणी करते हुए प्रकाश द्वारा दूरी तय करने में लगने वाले विलंब की चर्चा की थी।

कासिनी ने अब पैंतरा बदलकर ग्रहण दिखने में लगने वाले विलंब के लिए उपग्रह की कक्षा अत्यंत अंडाकार होने तथा उपग्रह की कक्षा के अलग - अलग हिस्सों में उपग्रह की अनियमित गति के लिए कुछ अज्ञात कारण होने की बात कही। यहां तक कि रोमर के प्रकाशित अवलोकनों को भी उसने संदेहास्पद बताया। कासिनी का सबसे सशक्त तर्क था कि बृहस्पति के अन्य उपग्रहों में तो इस तरह का विलंब नहीं पाया गया है। उस समय बड़े ग्रहों के उपग्रहों की गति के सिद्धांतों और उनके परस्पर असर को लेकर जो काम चल रहा था, वह अभी अपने प्रारंभिक चरण में होने की वजह से रोमर के पास कासिनी के इस तर्क का कोई जवाब नहीं था।

रोमर के काम को पेरिस वेधशाला के साथियों द्वारा न सराहे जाने का

कारण बड़ा ही साफ था क्योंकि उनमें से बहुत से कासिनी के रिश्तेदार थे, इसलिए वे कासिनी के साथ थे। लेकिन फ्रांस में रोमर के काम को महत्वपूर्ण न मानने के कुछ और कारण भी थे। जैसे: रोमर पेरिस ऐकेडमी ऑफ साइंसेज़ का सदस्य नहीं था (उसने इस ऐकेडमी की सदस्यता विदेशी सदस्य के रूप में न्यूटन के साथ 1699 में ली)। दूसरा कारण रोमर का प्रोटेस्टेंट होना था। फ्रांस में 1598 में लागू एक एक्ट के मुताबिक फ्रांस में प्रोटेस्टेंटों की धार्मिक और नागरिक आज़ादी पर कुछ पाबंदियां लगाई गई थीं। इस वजह से भी रोमर की खोज का विरोध किया जा रहा था।

1680 आते-आते फ्रांस की इस भेदभाव मूलक नीति के कारण कई प्रोटेस्टेंट वैज्ञानिक अपने-अपने देशों को लौटने लगे थे, जिसको देखते हुए फ्रांस के सम्राट लुई-14 ने इस एक्ट को 1685 में निरस्त किया लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। रोमर 1681 में अपने देश डेनमार्क लौट गया और वहां कोपेनहेगन में अपने काम को आगे बढ़ाता रहा।

यहां तक आते-आते प्रकाश की गति का मामला तो खत्म हो गया क्योंकि आने वाली सदियों में प्रकाश की गति का शुद्धतम मान 3×10^8 मीटर/सेकेंड निकाला गया। लेकिन आप यह ज़रूर सोच रहे होंगे कि फिर देशांतर रेखाओं की पहेली का क्या हुआ? घोषित किए गए इनाम किसी के हाथ आए क्या?

यकीन मानिए आज इंटरनेशनल डेट लाइन है, छोटे-से-छोटे देश का अपना मानक समय है; यह सभी देशांतर रेखाओं के निर्धारण की वजह से ही संभव हो पाया है। फिलहाल देशांतर रेखाओं की इस पहेली को किसी आगामी लेख के लिए मुल्तवी रखते हैं।

माधव केलकर: संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।

यह लेख; *'द ग्रेटेस्ट स्पीड'*, एस. आर. फिलोनोविच, मीर प्रकाशन और *'द क्वेस्ट फॉर लोंगिट्यूड'*, विलियम जे. एच. एंडर्यूस द्वारा संपादित, हार्वर्ड कॉलेज द्वारा प्रकाशित किताब में दी गई जानकारियों पर आधारित है।

श्रुतलेखन
मात्राओं-वर्तनी में सुधार कैसे
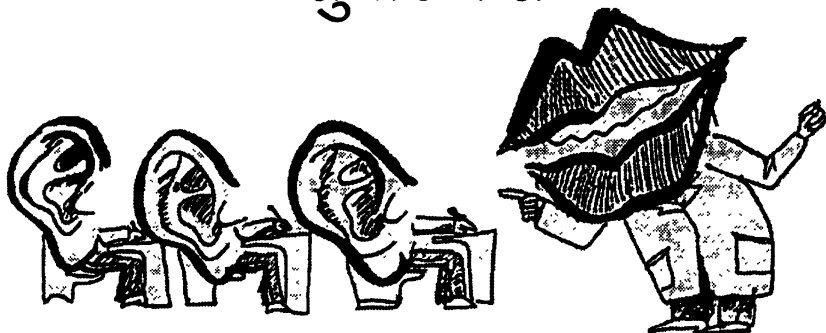
कमलेश चंद्र जोशी

प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों को शुद्ध भाषा सिखाने के लिए बहुधा श्रुतलेख लिखवाया जाता है। श्रुतलेख लेखन का अभ्यास सभी विद्यालयों में होता है। इस अभ्यास के अंतर्गत शिक्षक का यह ज़ोर रहता है कि बच्चे अपनी भाषा में शुद्धता लाएं। इसके लिए वे अपनी मात्रा व वर्तनी संबंधी त्रुटियों पर ध्यान दें तथा सुधार करें। इन त्रुटियों को सुधारने के लिए शिक्षक श्रुतलेख लिखवाने के बाद त्रुटियों को सुधारने के लिए उसी शब्द को पांच या सात बार लिखवाने का अभ्यास करवाते हैं। एक ही शब्द को बच्चों से बार-बार लिखवाना बच्चों की दृष्टि से नीरस अभ्यास है। इस अभ्यास पर अगर ध्यान दें तो हमें पता चलता है कि बच्चों के लिए इसमें कुछ भी रोचक नहीं है। हां, यह ज़रूर हो सकता है कि इस तरह से एक ही

शब्द को लिखते-लिखते वे शब्दों से चिढ़ने लगें और उनकी भाषा सीखने के प्रति रुचि कम हो जाए।

अभिव्यक्ति की आज़ादी?

मन में हमेशा यह सवाल उठता है कि अगर श्रुतलेख की त्रुटियों को कुछ रोचक-मनोरंजक ढंग से सुधारने के उपाय बच्चों को सुझाए जाएं जिनसे वे स्वयं जुड़ सकें, तो यह बच्चों के लिए भाषा सीखने का एक मनोरंजक तरीका हो सकता है। बच्चों को भाषा सिखाने के संदर्भ में यह भी देखने को मिलता है कि हमारे विद्यालयों में श्रुतलेख के अलावा बच्चों को भाषा सिखाने के लिए अन्य अभ्यासों पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया जाता। अगर कोई अभ्यास करवाया भी जाएगा तो केवल वही अभ्यास होता है जिसे शिक्षक ठीक मान रहा है, चाहे ऐसे अभ्यास में रोचकता नाम मात्र भी न हो।

हम प्राथमिक विद्यालयों के निबंध को याद करें, जिसमें वही लिखना होता है जो शिक्षक ने लिखवाया है। इस मामले में सदैव यही लगता है कि निबंध लिखने में बच्चों को खुद लिखने का मौका क्यों नहीं दिया जाता, जिससे बच्चे का खुद का नज़रिया बने व लेखन में उनके अनुभव की झलक मिल सके। शिक्षक द्वारा लिखवाए गए निबंध को देखें जिनकी पंक्तियां कुछ इस प्रकार होती हैं – हमारे घर में एक गाय है। मेरी गाय का नाम श्यामा है। उसके चार पैर होते हैं। उसकी एक पूंछ होती है। गाय हमें मीठा दूध देती है आदि, आदि। अब आप ही सोचिए क्या इन वाक्यों में कोई भी सरल-सुलभ वाक्य दिखाई देता है? हमारी समझ में गाय के बारे में बच्चा स्वयं लिखे तो बेशक वह इससे कहीं बेहतर होगा। अलग-अलग बच्चों के अलग-अलग अनुभव होंगे। उनकी अपनी गाय की कल्पना, उसका रंग, उसका नाम निश्चित रूप से अलग होगा ही; वे कतई एक जैसी बातें नहीं लिखेंगे बल्कि बहुत सारे नए पहलुओं के बारे में लिखेंगे जिनकी शायद हम कल्पना ही न कर पाएं।

दूसरी बात है कि बच्चों को हम शुद्ध भाषा ज़रूर सिखाएं लेकिन इस बात का ख्याल रखने की आवश्यकता है कि बच्चों की शुद्ध भाषा पर कौन-सी कक्षा से ध्यान देना आवश्यक होगा? और उसके तरीके क्या होंगे? इन पर समझ बनाने की ज़रूरत है।

शिक्षकों के साथ मिलकर

आजकल मैं एक परियोजना के तहत चलाए जा रहे वैकल्पिक शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ा हुआ हूं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत केन्द्रों पर पढ़ाने वाले शिक्षकों (जिन्हें अनुदेशक कहा जाता है) के प्रशिक्षण में विभिन्न गतिविधियां

करवाने का मौका मिलता है। एक बार हमें अनुदेशकों के लिए कक्षा तीन के स्तर का एक सात दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाना था। इस कार्यक्रम को बनाते समय यह सोचा गया कि एक सत्र बच्चों की मात्रा व वर्तनी संबंधी त्रुटियों के निवारण को लेकर भी हो। इस पर आयोजित सत्र में सबसे पहले अनुदेशकों के लिए एक श्रुतलेख बोला गया जो निम्नवत था।

"एक कुत्ते की एक भेड़िये से दोस्ती हो गई। हुआ यह कि कुत्ता भेड़िये का पीछा कर रहा था। कुत्ता खूब तगड़ा था और भेड़िया कुछ कमज़ोर था। भेड़िया भागते-भागते थक गया और एक तालाब के किनारे सुस्ताने लगा। कुत्ता तालाब की दूसरी तरफ आकर रुक गया और भौंकने लगा। फिर दोनों की नज़र अपनी-अपनी परछांई पर पड़ी। दोनों को लगा कि उनकी शक्लें आपस में इतनी मिलती हैं। शायद उन दोनों के पुरखे एक ही रहे हों। इस तरह उनके बीच दोस्ती हो गई।'"

दूसरा पैराग्राफ इस प्रकार था:

"हमारे देश से बहुत दूर दक्षिण में न्यू-गिनी नाम की एक जगह है। यह एक बहुत बड़ा टापू है – चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ। यहां पर साल भर बहुत गर्मी पड़ती है और पानी भी बहुत गिरता है। इस कारण से यहां के जंगल बहुत घने हैं। इतने घने कि दिन में भी नीचे ज़मीन तक रोशनी नहीं पहुंचती।"

अनुदेशकों को श्रुतलेख लिखवाने के बाद उनकी जांच की गई। इसके बाद अनुदेशकों को चार-चार के छः समूहों में बांटा गया और हर समूह को एक चौथाई चार्ट पेपर दिया गया जिस पर चार कॉलम बने थे। सभी अनुदेशकों को यह बताया गया कि वे अपने नाम, संबंधित समूह को मिले सादे चार्ट पेपर के स्तभों में लिख लें तथा अपने-अपने समूह में एक लिखित अंताक्षरी खेलें। पहला अनुदेशक जो शब्द बोले उसे उसके नाम के कॉलम में लिखें। फिर उस शब्द के अंतिम अक्षर से दूसरे अनुदेशक को नया शब्द बनाना है और अपने कॉलम में लिख लेना है। इस तरह खेल शुरू हो जाएगा और चलता रहेगा।

इसके बाद अनुदेशकों को एक और अभ्यास कराया गया। उनसे कहा गया कि वे अपनी कॉपी का एक पृष्ठ निकाल लें और उस पर इन चार विषयों – बरसात, पंचायत चुनाव, जीप से यात्रा और हमारा केन्द्र में से किसी एक विषय पर एक पैराग्राफ लिखें।

और अंत में इन तीनों अभ्यासों से संबंधित पृष्ठों को अनुदेशकों से ले

लिया गया तथा उनकी जांच की गई। इसके बाद हमने चर्चा शुरू की।

"अब आप लोग बताएं कि इन तीनों अभ्यासों में आपको कौन-सा अभ्यास सबसे ज़्यादा रोचक लगा?" इस पर कई प्रतिभागियों ने कहा, "हमें अंताक्षरी वाला अभ्यास अच्छा लगा। इसमें बच्चों को भी आनंद आएगा।" लेकिन कुछ अनुदेशक इस बात से सहमत नहीं थे। उन्होंने कहा, "नहीं, हमें सबसे पहले वाला अभ्यास अच्छा लगा।" आम सहमति नहीं बन पा रही थी तब हमने पूरे समूह के सामने एक प्रश्न और रखा कि श्रुतलेख वाले अभ्यास की क्या विशेषता थी? इस पर उन्होंने जवाब दिया, "इस अभ्यास में हमारा ध्यान केन्द्रित था। हमारे लिखने की गति बनी हुई थी कि इसमें कुछ छूट न जाए। इसके साथ ही हमें आपके उच्चारण पर भी ध्यान देना पड़ रहा था।" आदि।

हमने फिर सवाल किया, "जहां तक ध्यान केन्द्रित करने की बात है तो क्या वह अंताक्षरी खेलते हुए या मन चाहे विषय पर अपने आप पैराग्राफ लिखते हुए केन्द्रित नहीं था?" इस पर पूरे हॉल में चुप्पी छा गई। किसी ने दबे हुए स्वर में कहा, "हां, उनमें भी था।"

तत्पश्चात मैंने थोड़ा विस्तार से बात शुरू की, "देखिए, श्रुतलेख वाले अभ्यास में क्या हुआ? वह अभ्यास शिक्षक केन्द्रित था। जो मैं बोल रहा था वही आपको लिखना था। इसके साथ यह भी ध्यान देने की बात है कि शब्द को सही लिखने के लिए आपको मेरे उच्चारणों पर भी ध्यान देना पड़ रहा था। अगर मैंने कुछ गलत उच्चारण कर दिए तो आप भी वैसा ही लिखेंगे। यह इस अभ्यास की सीमा थी। यहां यह भी समझना होगा कि हम अक्सर श, स, ष के उच्चारण में सही विभेद नहीं कर पाते।" यहां मैंने यह भी बताया कि मैं भी इनके उच्चारण बहुत स्पष्टता से नहीं कर पाता हूं। इसी तरह से 'उ' या 'ऊ' की मात्रा तथा 'इ' या 'ई' की मात्रा आदि में भी त्रुटियां होती रहती हैं।

श्रुतलेखन : बच्चों का नज़रिया

कुल मिलाकर मैंने यह बताने की कोशिश की कि श्रुतलेखन बच्चों की नज़र में कोई बहुत रोचक गतिविधि नहीं है जिसमें उन्हें आनंद आए। इसमें जो आप बोल रहे हैं उस पर उन्हें ध्यान देना पड़ता है। इसके साथ अक्सर यह भी देखने में आया है कि हम भाषा पर बच्चों की अच्छी पकड़ बनाने के लिए कक्षा की पाठ्यपुस्तकों में से कठिन-से-कठिन हिस्से उन्हें बोलकर लिखाते हैं। इससे हम यह समझते हैं कि बच्चों की मात्रा संबंधी समझ पक्की होगी और उनका शुद्ध लिखने का

अभ्यास भी होगा। यहां पर हम बच्चों की अपनी अभिव्यक्ति, अपनी सोच की ज़रा भी चिंता नहीं करते। इस तरह कठिन शब्द सुनकर लिखना बच्चों की दृष्टि से काफी बोरियत पूर्ण कार्य होता है, क्योंकि आपके द्वारा बोले गए शब्दों का उनके लिए कोई अर्थ व संदर्भ नहीं होता। उन्हें उन शब्दों का अर्थ निकालने में भी काफी दिक्कत आती है। हमें यह समझना चाहिए कि बच्चे, शब्द संदर्भों में इस्तेमाल के ज़रिए ही अच्छे ढंग से सीखते हैं।

भाषा सिखाने के और अभ्यास

यहां मैं यह नहीं कह रहा कि आप अपने केन्द्रों पर बच्चों को श्रुतलेख ही न लिखवाएं। आप कभी-कभी अपने केन्द्रों पर ज़रूर श्रुतलेख भी लिखवा सकते हैं। लेकिन, इसके अलावा भी बच्चों को भाषा सिखाने के लिए विविध अभ्यासों की ज़रूरत पड़ती है; जिससे बच्चों की रुचि बनी रहे और उन्हें स्वयं को अभिव्यक्त करने के मौके मिलें; जैसा कि दूसरे खेल अंताक्षरी में देखने को मिला कि आप सब अपने मन से नए-नए शब्द लिख रहे थे। इस कार्य में आपके साथी भी आपकी मदद कर रहे थे, और यहां तक कि मुझे आपको ज़्यादा टोकने की ज़रूरत ही नहीं थी। कुल मिलाकर अंताक्षरी वाला अभ्यास आपको नए शब्द सोचने में सहायता कर रहा था। आप उसमें ध्यानमग्न थे। इस तरह के अभ्यास बच्चों के लिए रोचक हो सकते हैं। इतना ही नहीं आप बच्चों से कागज़ वापस लेकर उनकी मात्रा व वर्तनी संबंधी त्रुटियों को देख सकते हैं, उन पर नए अभ्यास बना सकते हैं। इसीलिए हमने कॉलम में सभी को अपना-अपना नाम लिखने को कहा था।

तीसरे अभ्यास को हम मौलिक अभिव्यक्ति वाला अभ्यास भी कह सकते हैं। यह अभ्यास पूरी तरह से आप पर यानी बच्चों पर केन्द्रित था। आप अपनी बातें व अपने अनुभव लिख रहे थे और मज़ेदार बात यह थी कि सभी के लेख अलग-अलग थे क्योंकि सभी की सोच व अनुभव अलग-अलग होते हैं। ऐसे अभ्यास भी आप बच्चों से करवा सकते हैं। उनसे उनकी मौलिक अभिव्यक्ति को मौका मिलेगा। लेकिन यह अभ्यास आपको बहुत अच्छा नहीं लगा। इसका कारण यह हो सकता है कि आपकी इस तरह के अभ्यास करने की आदत ही न रही हो। हो सकता है कि आपको इस तरह लिखने के मौके पहले न मिले हों। ऐसी ही दिक्कत आपको पहले दिन प्रशिक्षण रिपोर्ट लिखने में भी आई थी।

इसके बाद हमने यह बताने की कोशिश की, कि बच्चों को भाषा सिखाने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम केवल श्रुतलेख पर ही आश्रित रहें; हम तरह-तरह के तरीके अपना

सकते हैं व गतिविधियां बना सकते हैं। इन तरीकों के ज़रिए बच्चों को स्वयं को व्यक्त करने का मौका मिलता है। ऐसे और भी तरीके हो सकते हैं, जैसे – सरल वर्ग पहेली, अधूरी कहानी या कविता को पूरा करना, चित्र पर आधारित कहानी या कविता को पूरा करना आदि। कुल मिलाकर इन सबके ज़रिए बच्चे की भाषा का विकास खुद-ब-खुद होता चला जाता है। हमारा मूल उद्‌देश्य भी यह है कि बच्चे की अपनी भाषाई अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास हो। इसमें कोई शक नहीं है कि बच्चे नए-नए अभ्यासों, नए-नए संदर्भों व नई-नई गतिविधियों से बहुत कुछ सीखते हैं।

कुछ सुझाव और नए अभ्यास

इस चर्चा के बाद फिर उनसे पूछा गया कि श्रुतलेखन व अन्य अभ्यासों में मात्रा व वर्तनी संबंधी त्रुटियों के लिए आप क्या करते हैं? और क्या करेंगे? इस पर सभी ने एक मत से कहा, "हम इन गलतियों को सुधारकर उच्चारण करते हुए सही शब्द ब्लैक-बोर्ड पर लिख देते हैं तथा बच्चों से इन्हें ब्लैक-बोर्ड से उतारकर लिखने को कहते हैं। उन शब्दों को और पक्का कराने के लिए हम अगले दिन इन्हीं शब्दों का फिर श्रुतलेख लिखवाते हैं।" इसपर मैंने पूछा, "एक शब्द को बार-बार लिखना बच्चों के लिए कैसा अनुभव है? क्या इसमें बच्चे की दृष्टि से कुछ रोचकता है?" सभी ने कहा, "नहीं।" "तब हमें इसे रोचक बनाने के लिए क्या करना चाहिए?" इस पर सब चुप हो गए। फिर संतोष कुमार ने कहा, "हम कोई वाक्य लिखकर उसमें गलत शब्द का सही रूप लिखवा सकते हैं।" राजकुमारी ने कहा, "गलत शब्दों के सही कार्ड बनाकर उन्हें बच्चों से ढूंढ़वा सकते हैं, और इसके द्वारा उनकी गलतियों को सुधार सकते हैं।" फिर इसी तरह के और सुझाव भी आए। मैंने उन्हें बताया कि हम अपने केन्द्रों पर इस तरह के अभ्यास करवाएं तब पता चलेगा कि इनमें से कौन-कौन-सी गतिविधियां ज़्यादा कारगर हैं।

उसके बाद उनसे एक और गतिविधि करवाई। उनसे कहा कि श्रुतलेख में जो त्रुटियां आपने की हैं उन पर हमने निशान लगा दिए हैं। अब पूरी कक्षा को करना यह है कि वे चार समूहों में बंटकर इन गलतियों के सुधार के लिए कुछ रोचक अभ्यास बनाएं। इसके लिए पैंतालिस मिनट का समय दिया जा रहा है।

समूह के कार्य के बाद सभी समूहों ने बारी-बारी अपने अभ्यासों का प्रस्तुतिकरण किया। इसमें हम लोगों ने भी उनकी मदद की। इस प्रस्तुतिकरण में अनुदेशकों ने मात्रा व वर्तनी संबंधी सुधारों के कुछ अभ्यास सुझाए। शुद्ध व अशुद्ध शब्दों का कॉलम बनाकर

उनका मिलान करना; कुछ कार्डों पर अशुद्ध शब्द लिखकर ब्लैक-बोर्ड पर लिखे सही शब्दों से मिलान करवाना, आदि सुझाव आए।

एक अभ्यास यह भी था कि अगर कोई गलत मात्रा लगी हो तो उसे उसी मात्रा के तुक वाले शब्दों के द्वारा भी स्पष्ट कर सकते हैं जैसे – खूब, दूध, सूप, धूप, कूप, भूप आदि। शिक्षकों को यह भी बताया गया कि मात्राओं को स्पष्ट करने के लिए हमें सही उच्चारण का भी सहारा लेना होगा। इसके साथ ही अशुद्ध शब्दों को सुधारकर लिखे गए सही शब्दों का, नए वाक्यों में प्रयोग करना भी एक अभ्यास था। प्रस्तुतिकरण के दौरान यह भी देखा गया कि जो वाक्य प्रतिभागियों ने बनाए वे बड़ों के संदर्भ लिए हुए थे और अक्सर बेहद सतही थे। इसलिए चर्चा के दौरान उन्हें और रोचक बनाकर लिखा गया। अशुद्ध शब्दों में से कुछ थे – शक्लें, खूब, सुस्ताने, भेड़िया, दूसरी आदि। उनके अभ्यास के लिए जो वाक्य अंत में बने वे निम्नलिखित थे–

1. डंगर धूप में चलते-चलते थक गया। वह पेड़ के नीचे बैठकर . . . लगा।
2. सुखवती तीसरी कक्षा में पढ़ती है। वह . . . कक्षा में प्रथम आई।
3. ललिता अपने मामा की शादी में गई। उसने वहां . . . मिठाइयां खाईं।
4. सोनू-मोनू जुड़वां भाई हैं। उनकी . . . आपस में मिलती हैं।
5. कुत्ते और भेड़िये में दोस्ती थी। . . . जंगल में रहता है।

यहां हमने स्थानीय संदर्भों का उपयोग किया। जैसे 'डंगर' प्रशिक्षण स्थल पर खाना बनाने-खिलाने में मदद करने वाले व्यक्ति का नाम था। 'सुखवती और ललिता' प्रशिक्षण लेने वाली दो शिक्षिकाएं थीं। मामा की शादी वाला वाक्य भी इसलिए इस्तेमाल किया क्योंकि उस समय आसपास के गांवों में शादी का ज़ोर था।

इस पूरी प्रक्रिया से यह निष्कर्ष निकलता है कि अगर हम बच्चों को पढ़ाने-सिखाने के लिए कुछ वैकल्पिक तरीके सोचें जो बच्चों का सीखना आसान बनाते हों, तो हमें नए रास्ते मिल सकते हैं। अब आप भी इसी तरह के कुछ और तरीके सुझाएं और उन्हें अपनी कक्षा में भी अपनाएं।

कमलेश चंद्र जोशी: लखनऊ की नालंदा संस्था से जुड़े हैं। बच्चों के साथ काम करने में विशेष दिलचस्पी है।

क्या इंसान एक मशीन है?
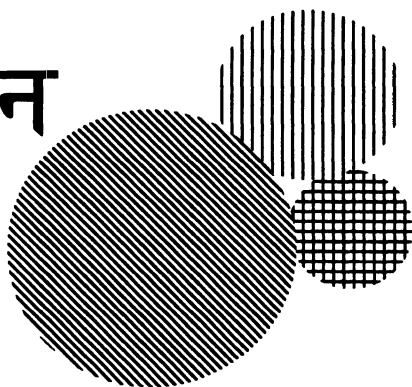
जे. बी. एस. हाल्डेन

इस अंक से यह शृंखला शुरू कर रहे हैं। इसमें मानव शरीर के विविध तंत्रों की सामान्य विवेचना की गई है।

आज से लगभग तीन सदी पहले फ्रांसिसी दार्शनिक देकार्ते ने कहा था कि इंसान मशीन है। देकार्ते का मानना था कि समस्त पशु मशीनें हैं और इंसान एक ऐसी मशीन है जिसका संचालन आत्मा करती है। यूनानी और रोमन दार्शनिकों के मन में ऐसा विचार कभी नहीं आया क्योंकि उन्होंने तीर-कमान और घिरनियों से ज़्यादा पेचीदा मशीनें देखी ही नहीं थीं। जब घड़ी जैसी अत्यंत पेचीदा मशीनें बनाई जाने लगीं तो इंसान के मशीन होने जैसा विचार संभव लगने लगा।

ज़ाहिर है कि यह एक उपयोगी विचार है क्योंकि हम अपने शरीर के हिस्सों के बारे में ठीक वैसे ही सवाल पूछ सकते हैं जैसे मशीनों के बारे में पूछते हैं। हृदय का काम क्या है और यह कैसे काम करता है? इसका काम है खून को पूरे शरीर में पंप करना, जैसे कई मोटरों में ऑइल पंप होता है जो मोटर में तेल पंप करता है। और हृदय में भी पंप की ही तरह

वॉल्व तथा अन्य उपांग होते हैं।

इसी प्रकार से हम आंख की तुलना कैमरे से, तंत्रिकाओं की तुलना टेलिग्राफ के तारों से, त्वचा के नीचे मौजूद चर्बी की तुलना बॉइलर के इर्द-गिर्द लपेटे गए कुचालक पदार्थ से कर सकते हैं।

इंसान को मशीन के रूप में चित्रित करना देकार्ते के ज़माने में जितना भी उपयोगी रहा हो, उससे ज़्यादा उपयोगी आज है। कारण यह है कि देकार्ते के काल में तो स्वचालित मशीनें स्प्रिंग के आधार पर चलती थीं किन्तु आज ये कोयले या पेट्रोल से चलती हैं। यदि हम मात्र इनपुट व आउटपुट को देखें और बारीकियों में न जाएं तो कोयले या डीज़ल से चलने वाले इंजिन व इंसान के बीच काफी साम्य है। दोनों को ही दहन-योग्य भोजन या ईंधन की तथा हवा की पर्याप्त मात्रा की ज़रूरत होती है। दोनों ही मामलों में भोजन या ईंधन की क्रिया हवा में उपस्थित ऑक्सीजन से होती है और कार्बन डाईऑक्साइड व पानी उत्पन्न होते हैं।

आप चाहें तो एक इंसान अथवा मोटरसायकल द्वारा छोड़ी गई गैसों को एक बैग में एकत्रित करके उसकी जांच कर सकते हैं। इंसान व मशीन दोनों के लिए आप एक संपूर्ण जमा-खर्च के खाते जैसा बैलेंस शीट बना सकते हैं; और यदि दिन भर में किसी इंसान का वज़न न घटे, न बढ़े, तो आप उसकी खपत व निकासी का सही-सही संतुलन करके देख सकते हैं।

यदि आप एक इंसान को एक अच्छी तराजू पर बैठा दें तो पाएंगे कि उसका वज़न लगातार कम होगा। किंतु वज़न में यह कमी उसके फेफड़ों व त्वचा से निकलने वाली कार्बन डाईऑक्साइड व जल वाष्प की कुल मात्रा के बराबर ही होती है। इससे भी रोचक बात यह है कि आप ऊर्जा की भी एक सटीक बैलेंस शीट बना सकते हैं। इसमें जमा के मद में वह ऊर्जा होगी जो भोजन के ऑक्सीकरण से प्राप्त हो सकती है। भोजन में उपलब्ध ऊर्जा का पता लगाना संभव है, इस भोजन को एक कैलोरीमीटर में जलाना होगा। खर्च में कई मद हैं। विष्ठा को जलाकर जो थोड़ी-सी ऊर्जा मिल सकती है, व्यक्ति द्वारा किया गया यांत्रिक काम और उसके शरीर के द्वारा उत्पन्न उष्मा, ये सभी खर्च के मद हैं।

स्वाभाविक है कि एक दिन में यह बैलेंस थोड़ा त्रुटिपूर्ण होगा। कोई भी इंसान 20-25 ग्राम चर्बी जमा कर सकता है। किंतु जब यही प्रयोग 3 व्यक्तियों के साथ 40 दिनों तक किया गया तो कुल ऊर्जा जमा-खर्च में मात्र 0.2 प्रतिशत की गड़बड़ी हुई।

ज़ाहिर है कि हम न तो ऊर्जा का निर्माण करते हैं और न ही किसी पारलौकिक स्रोत से ऊर्जा प्राप्त करत

हैं। हम किसी भी मशीन की तरह उतनी ही ऊर्जा प्राप्त करते हैं जो भोजन के ऑक्सीकरण से उपलब्ध हो सकती है। परिणामस्वरूप किसी भी खुराक के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह होती है कि उसका ऊर्जा मूल्य कितना है।

इंसानों का ऊर्जा आउटपुट व ज़रूरतों का आकलन आमतौर पर किलो कैलोरी में किया जाता है। कई पुस्तकों में इसे कैलोरी ही लिख दिया जाता है। किलो कैलोरी ऊष्मा की वह मात्रा है जो 1 किलोग्राम पानी का तापमान 1 अंश सेल्सियस बढ़ा सकती है। कोई अकर्मण्य व्यक्ति प्रतिदिन 2000 किलो कैलोरी से काम चला सकता है जबकि सामान्य मज़दूर को 3000 किलो कैलोरी की ज़रूरत होती है; व किसी खदान मज़दूर को 5000 किलो कैलोरी की ज़रूरत होती है।

एक सुप्रशिक्षित व्यक्ति की ऊर्जा के उपयोग की कार्यक्षमता 20 प्रतिशत तक पहुंच सकती है। कहने का मतलब यह है कि उसका जो ऊर्जा आउटपुट होता है उसमें से 20 प्रतिशत तो काम के रूप में होता है और 80 प्रतिशत उष्मा के रूप में। किंतु कोई भी व्यक्ति कड़ी मेहनत तो दिन के एक भाग में ही करता है; इसलिए यह औसत कार्यक्षमता बनी नहीं रहती। यह सही है कि भाप या पेट्रोल से चलने वाले इंजिन की कार्यक्षमता कहीं ज़्यादा हो सकती है किंतु यह तुलना उपयुक्त नहीं कही जा सकती। आखिर कोई भी इंजिन अपनी भट्टी में खुद कोयला नहीं डालता, खुद का तेल-पानी नहीं करता और न ही समय-समय पर अन्य इंजिनों के साथ सहयोग करता है। हमारी काफी सारी ऊर्जा तो खुद को कामकाजी हालत में बनाए रखने में खर्च होती है। उदाहरण के लिए खून को पूरे शरीर में पंप करने में हृदय जो ऊर्जा खर्च करता है वह अंततः ऊष्मा में तब्दील हो जाती है।

तो इन अहम पहलुओं में इंसान एक मशीन है। यह देखना भी उपयोगी होगा कि किन मायनों में वह मशीन नहीं है। मशीन का एक अनिवार्य लक्षण यह होता है कि उसके किसी भी भाग की जगह स्पेयर पार्ट लगाया जा सकता है। इंसान के संदर्भ में यह बात कुछ हद तक ही सही है। यदि आप एक व्यक्ति की भुजा दूसरे को लगा देंगे तो हो सकता है कि तत्काल तो वह लग जाए किंतु देर-सबेर वह मर जाएगी। पेड़-पौधों में स्थिति अलग है, आप अलग-अलग किस्म या अलग-अलग प्रजाति के पेड़ों की कलम एक-दूसरे पर लगा सकते हैं। और आश्चर्य की बात तो यह है कि आप मेंढकों में भी ऐसा कर सकते हैं, बशर्ते कि आप भ्रूणावस्था में प्रयोग करें। एक प्रजाति का सिर दूसरी प्रजाति के धड़ पर जी

सकता है। दूसरी ओर रक्त प्रत्यारोपण में हुए अनुसंधान से पता चलता है कि इंसानी खून का इस्तेमाल बतौर 'स्पेयर पार्ट' किया जा सकता है। हां, इसमें कुछ सावधानियां बरतनी होती हैं। इसी प्रकार से यदि किसी व्यक्ति का अग्नाशय (पैंक्रियाज़) एक विशेष ढंग से गड़बड़ हो जाए तो वह व्यक्ति शक्कर का उपयोग नहीं कर सकता। किन्तु यदि उसे सुअर के अग्नाशय में निर्मित इंसुलीन दे दिया जाए तो वह तंदुरुस्त हो जाता है। यानी इंसुलीन भी एक 'स्पेयर पार्ट' है।

अर्थात शायद ज़्यादा मौजूं सवाल यह होगा: 'मनुष्य कितनी हद तक मशीन है?' इस सवाल का जवाब विस्तार में दिया जा सकता है। मसलन जवाब का एक हिस्सा यह होगा कि जहां तक स्पेयर पार्ट का सवाल है, इंसान किसी पेड़ या मशीन की अपेक्षा कम मशीन है। किंतु फिर भी कुछ हद तक तो वह मशीन है ही। अब हम इंसानी मशीन के कुछ पुर्जों की तफसील से मालूमात करेंगे।

✡ ✡ ✡

हमारा कामकाज : मासपेशियां

हमारी चमड़ी के नीचे कई अंग हैं। इन अंगों की जमावट लगभग वैसी ही है जैसे किसी खरगोश, बिल्ली या भेड़ के शरीर में होती है। मतलब सामान्य खाका वही है। हमारे अंगों की जमावट किसी बंदर से ज़्यादा मिलती-जुलती है। सूक्ष्मदर्शी की मदद से हम देख सकते हैं कि ये सारे अंग कोशिकाओं से मिलकर बने हैं। एक औसत कोशिका की लंबाई करीब एक

इंच का हज़ारवां भाग होती है। कोशिका का आकार लगभग एक रेत की बोरी के समान होता है जिसे एक बेडौल ढेर में दबा दिया गया हो। एक इकलौती कोशिका को उपयुक्त तरल पदार्थ में बरसों जीवित रखा जा सकता है किन्तु कोशिका से छोटी कोई चीज़ (इकाई) चंद घण्टों से ज़्यादा जीवित नहीं रहेगी। दरअसल, कोशिका एक जीवित इकाई है जिसका अपना एक अंदरुनी संगठन होता है।

हमारी हस्ती का एक बड़ा हिस्सा मांसपेशियों से बना होता है, इन्हें सिर्फ मांस या सिर्फ पेशियां भी कहते हैं। हमारी अधिकांश मांसपेशियां तभी काम करती हैं जब उन्हें तंत्रिका से उद्दीपन मिले। यदि तंत्रिका को काट दिया जाए तो मांसपेशियां पूरी तरह शिथिल पड़ जाती हैं। ये सारी मांसपेशियां हमारी इच्छा के नियंत्रण में हैं। अन्य मांसपेशियों की तंत्रिकाएं काट दी जाएं तो वे या तो आंशिक रूप से संकुचित अवस्था में रहेंगी या एक लय में फैलती-सिकुड़ती रहेंगी। हृदय की मांसपेशियां, तथा अमाशय व बच्चादानी की मांसपेशियां इस प्रकार की हैं। इनको प्रत्यक्ष तौर पर तंत्रिका तंत्र द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

ऐच्छिक मांसपेशियां लगभग सदैव प्रायः दोनों सिरों पर हड्डियों से जुड़ी रहती हैं। किन्तु मांसपेशी व हड्डी के बीच बहुधा एक लंबी कण्डरा होती है। इस बात की पुष्टि आसानी से की जा सकती है कि हमारी उंगलियों को हिलाने-डुलाने वाली ज़्यादातर मांस-पेशियां भुजा में हैं और इनकी कण्डराएं कलाई में से होकर गुज़रती हैं।

हम यह भी दिखा सकते हैं कि मांसपेशी रसायन-चलित मशीन है। इसके लिए हमें किसी मांसपेशी में धमनी से पहुंच रहे खून और वहां से शिरा द्वारा ले जाए जा रहे खून का विश्लेषण करना होगा। धमनी से आने वाले खून की अपेक्षा शिरा वाले खून में ऑक्सीजन व शक्कर कम तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड अधिक मात्रा में होती है। वास्तव में मांसपेशियों के संकुचन के लिए ऊर्जा शक्कर और ऑक्सीजन की क्रिया से प्राप्त होती है। शक्कर और ऑक्सीजन खून में कैसे पहुंचते हैं, यह हम आगे देखेंगे।

सूक्ष्मदर्शी में हम देख सकते हैं कि मांसपेशी कई कोशिकाओं से मिलकर बनी होती है। ये कोशिकाएं लंबी होकर रेशेनुमा हो जाती हैं। प्रत्येक कोशिका तक एक तंत्रिका तंतु पहुंचता है। प्रत्येक रेशा अलग-अलग संकुचित होता है तथा मांसपेशी द्वारा लगाया गया बल इस बात पर निर्भर करता है कि उसके कितने रेशे संकुचित हो रहे हैं। प्रत्येक रेशा, यदि खींचेगा तो, अपनी पूरी ताकत से ही खींचेगा। मांसपेशियां मात्र खींचने का काम करती हैं। दरअसल
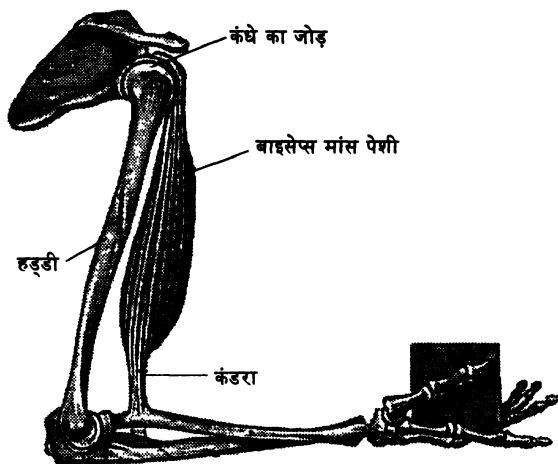
हाथों से भारी वज़न उठाते समय हड्डियों से जुड़ी बाइसेप्स मांस पेशियां ज़ोर लगाती हैं और इनमें संकुचन होता है। ये पेशियां कंडरा के ज़रिए हड्डी से जुड़ी होती हैं। जब वे हड्डी को हिलाने में सफल हो जाती हैं तब उनके लिए भार उठाना भी आसान हो जाता है।

भुजाओं की तथा निचले जबड़े की हड्डियों का प्रमुख काम यह है कि इस खिंचाव को धक्के में तब्दील करें। इस बात को महसूस करना आसान है; जब कोई व्यक्ति मुक्के से हथौड़े की तरह वार करे, तब यह महसूस किया जा सकता है कि उसकी कौन-कौन-सी मांसपेशियां सिकुड़ रही हैं।

मांसपेशियां बहुत विशाल बल लगाती हैं। कोहनी से बाइसेप्स मांस-पेशियों के सिरे की दूरी की तुलना में, कोहनी से हाथ की दूरी 6 गुना है। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति अपना वज़न एक हाथ से उठा लेता है तो उसकी बाइसेप्स मांसपेशी इससे छः गुना वज़न उठा लेंगी, बशर्ते कि यह वज़न उसकी कण्डरा से बांध दिया जाए। और जांघ की मांसपेशियां तो और भी शक्तिशाली होती हैं।

यह तो सही है कि मांसपेशी के संकुचन हेतु ऊर्जा, शक्कर के ऑक्सी-करण से आती है किन्तु यह इसका प्रत्यक्ष स्रोत नहीं है। तथ्य यह है कि रक्त प्रदाय काट दिए जाने के बाद भी मांसपेशी काफी समय तक काम कर सकती है। जब कोई मांसपेशी बहुत

तेज़ी से काम करती है तो वह बहुत तेज़ी से ऊर्जा उत्पन्न करती है। शक्कर के ऑक्सीकरण से इतनी तेज़ गति से ऊर्जा मुक्त होना संभव नहीं है। ऊर्जा का तात्कालिक प्रत्यक्ष स्रोत एडीनोसीन ट्राई फॉस्फेट नामक एक अस्थिर अणु होता है। यह मांसपेशी के रेशों को ठीक उस तरह सिकुड़ने को प्रेरित करता है जैसे ऊन सिकुड़ता है। बाद में काफी पेचीदा रासायनिक क्रियाओं के ज़रिए एडीनोसीन ट्राई फॉस्फेट (ए. टी. पी.) को फिर से तैयार कर लिया जाता है। आदर्श मांसपेशियां ए. टी. पी. की खुराक पर चल सकती हैं किन्तु यह शक्ति का व्यावहारिक स्रोत नहीं है।

इस बात को यों समझते हैं – कल्पना कीजिए कि एक पेट्रोल मोटर एक संग्राहक बैटरी को चार्ज करती है जो स्वयं एक डायनेमो को चलाती है और डायनेमो एक शक्तिशाली स्प्रिंग को ऐंठ देता है। मोटर अधिकतम पांच हॉर्स पॉवर शक्ति दे सकती है और जब संग्राहक चार्ज न हो जाए तब तक इतनी शक्ति देती रहती है। किन्तु संग्राहक एक छोटी अवधि के लिए दस हॉर्सपॉवर दे सकता है और स्प्रिंग तो एकाध सेकण्ड के लिए इससे भी ज़्यादा शक्ति दे सकता है।

लगभग यही हमारी मांसपेशियों के साथ भी होता है। यदि आपको मात्र 100 मीटर दौड़ना हो तो आप जी जान लगा देते हैं और आपकी मांसपेशियां अपनी पूरी ताकत लगा देती हैं। इस दौड़ के कुछ मिनट बाद तक आप हांफते रहते हैं यानी ज़्यादा जल्दी-जल्दी सांस लेते हैं। इस दौरान आपकी मांसपेशियां खून में से ऑक्सीजन व शक्कर लेकर अपने संग्राहक को चार्ज करती हैं, अपने स्प्रिंग को ऐंठती हैं। दूसरी ओर यदि आपको दो किलोमीटर दौड़ना हो, तो आप एक स्थिर चाल से दौड़ते हैं। यह चाल इस बात पर निर्भर करती है कि शक्कर के ऑक्सीकरण से मांसपेशियों को कितनी रफ्तार से ऊर्जा मिल पा रही है। इस मामले में संग्राहक को चार्ज्ड स्थिति में तथा स्प्रिंग को तनी हुई स्थिति में ही रखा जाता है। दौड़ के अंतिम हिस्से में आप अचानक अपनी चाल बढ़ाते हैं; एक तरह से स्प्रिंग को खुलने देते हैं, संग्राहक को डिस्चार्ज होने देते हैं। यदि आप बहुत जल्दी अपनी चाल बढ़ा देंगे तो आपकी मांसपेशियां इतनी कार्यक्षम नहीं हो पाएंगी।

अर्थात वही मांसपेशी छोटे समय के लिए कठोर श्रम कर सकती है और लंबे समय के लिए हल्का श्रम कर सकती है। गौरतलब है कि वास्तविक क्रियाविधि उपरोक्त उपमा की अपेक्षा कहीं ज़्यादा जटिल है।

एक बात खासतौर से ध्यान देने की है। मांसपेशियों में ग्लायकोजन नामक मण्ड के रूप में शक्कर का कुछ

भण्डार होता है। काम के दौरान मांसपेशी इस ग्लायकोजन का उपयोग कर लेती है। इसलिए होता यह है कि मांसपेशी की ऑक्सीजन की ज़रूरत पूरी हो जाने के बाद भी वह खून में से शक्कर लेती रहती है। (इस अतिरिक्त शक्कर को वह ग्लायकोजन में तब्दील करके अपना भण्डार पूरा कर लेती है।)

मांसपेशियों के कामकाज के इस संक्षिप्त विवरण से कई सवाल उठते हैं। सबसे स्वाभाविक सवाल है: 'तंत्रिकाएं मांसपेशियों को संकुचित कैसे करती हैं?' किन्तु अन्य सवाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं – जैसे मांसपेशियों को अपने काम के लिए ज़रूरी ऑक्सीजन व शक्कर कैसे मिलती है, या अन्य ज़रूरी पदार्थ कैसे मिलते हैं?

यह प्रश्न हमें शरीर की अर्थव्यवस्था के मुद्दे पर ले आता है। अर्थात शरीर के प्रत्येक अंग को उसकी ज़रूरत की रसद कैसे मिलती है और जो कचरा पैदा होता है उसे वहां से कैसे हटाया जाता है। मसलन गुर्दे और जिगर तो दिन रात काम करते रहते हैं। तो अर्थव्यवस्था का मुद्दा अगले अंक में।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के आधुनिक सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। उनके निबंधों का एक महत्वपूर्ण और रुचिकर संकलन 'ऑन बीइंग द राइट साइज़' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नाम के संकलन से लिया गया है।

कम्युनिस्ट विचारधारा के समर्थक हाल्डेन ने अपने जीवन का अंतिम समय भारत में अहिंसा के बारे में लिखते हुए गुज़ारा।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

पुस्तक अंश

व्हाय टोस्ट लैंड्स, जेली साइड डाउन

प्रियदर्शिनी कर्वे

इस किताब के लेखक, रॉबर्ट एहरलिच, अमेरिका की जॉर्ज मेसन यूनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं। यह लेख इस किताब के कुछ हिस्सों पर आधारित है। उनकी कुछ अन्य किताबें हैं – 'द कॉस्मॉलॉजिकल मिल्क शेक', 'वॉट इफ यू कुड अनस्क्रेंबल एन एग' और 'टर्निंग द वर्ल्ड इनसाइड आऊट एंड 174 अदर सिंपल फिज़िक्स डेमॉन्स्ट्रेशन्स' आदि।

सिद्धांतों की जांच-परख के संदर्भ में अक्सर यह कहा जाता है कि खुद से मॉडल तैयार करके देखो। जैसे ही मॉडल का सुझाव दिया जाता है तुरंत सामने से सवाल आता है– इतनी सब मगज मारी किसलिए? आप लोगों में से स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षकों को प्रयोगशालाओं में इस्तेमाल होने वाला सामान खरीदने के लिए पैसों की समस्या का अहसास होगा।

घर में तैयार किए गए मॉडल काफी सस्ते में तैयार हो जाते हैं और किसी अन्य महंगे उपकरण की तरह विश्वसनीय तरीके से काम करते हैं। इससे भी आगे जाकर कहें तो मॉडल डिज़ाइन करते हुए आप मूल मॉडल में सुधार कर सकते हैं, साथ ही ज़रूरत के

हिसाब से बदलाव भी कर सकते हैं।

कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि एकदम सरल और साधारण से दिखने वाले मॉडल के कारण बच्चों में अरुचि आती है। लेकिन मेरी राय इसके एकदम विपरीत है। भौतिक विज्ञान कोई अमूर्त, रोज़मर्रा की ज़िंदगी से कटा हुआ विज्ञान नहीं है। अपनी जानी-पहचानी, साधारण चीज़ों के इस्तेमाल से भौतिक विज्ञान को ज़िंदगी से जोड़ा जा सकता है। लेकिन महंगे उपकरणों का इस्तेमाल करने पर भौतिक विज्ञान हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी से दूर होता जाता है। जब एकदम ही ज़रूरी हो तो महंगे-जटिल उपकरणों का इस्तेमाल किए जाने का मैं विरोधी नहीं हूं। लेकिन जहां तक हो सके जटिल उपकरणों के इस्तेमाल से बचना चाहिए ऐसी मेरी धारणा है।

खुद मॉडल तैयार करने का एक खास फायदा है – वह है हम खुद मॉडल का बेहतर ढंग से आकलन कर सकते हैं, साथ ही हमें इसकी सीमाओं और कमी-बेशी का भी अंदाज़ा होता है। लेकिन इन सब से भी बढ़कर इसके पीछे छुपे विज्ञान को समझ पाते हैं। कई बार तो एकदम आसान मॉडल से उभरे निष्कर्षों से अनुभवी भौतिक शास्त्री भी अचरज में डूब जाते हैं।

मॉडल शिक्षकों को खुद तैयार करना चाहिए, बने -बनाए मॉडल खरीदने का उतना महत्व नहीं है। इसके पीछे कारण यह है कि खुद बनाया गया मॉडल शिक्षक द्वारा कक्षा में इस्तेमाल होने की संभावना कहीं ज़्यादा होती है। भौतिक विज्ञान पढ़ाने वाले अनेक शिक्षकों को अच्छे मॉडल देखने में रुचि होती है, लेकिन यही मॉडल अपनी कक्षा में दिखाना खासा कसरत का काम लगता है। पहले सामग्री एकत्रित करो, जोड़ो और फिर अगर मॉडल काम न कर रहा हो तो गलती खोजो, कक्षा को समझाओ कि गलती कहां हुई थी।

जिस किताब की चर्चा हम यहां कर रहे हैं उसमें ज़रूरी लगभग सभी सामग्री घर में या आसपास आसानी से मिल जाती है। इनमें से काफी मॉडल तो आप जेब में रखकर कक्षा में ले जा सकते हैं। और इन मॉडलों से न्यूटन के नियम के बदले मर्फी का

नियम सिद्ध होने का खतरा भी नहीं है। आखिर अपनी सृजनशीलता को आगे बढ़ाने के लिए, अपनी कल्पनाओं को और लोगों तक पहुंचाने के लिए तो आपको मॉडल बनाना ही चाहिए। हो सकता है आपको भौतिक विज्ञान पर कोई कार्यक्रम तैयार करना हो, या हाथों से तैयार किए गए मॉडलों की प्रदर्शनी बनानी हो, या अपने द्वारा तैयार किए गए मॉडल के बारे में कुछ लिखना हो। उद्देश्य कुछ भी हो आपका मॉडल बताए मुताबिक काम करेगा। इसकी जांच ज़रूर कर लीजिए क्योंकि ऐसे कई सारे प्रायोगिक मॉडल होते हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि वे आसानी से बन जाएंगे लेकिन वास्तव में उन्हें तैयार करके चला पाना खासा मुश्किल काम होता है; और इन पर काफी समय लगाने के बाद ही इन मुश्किलों को समझा जा सकता है, उन्हें दूर किया जा सकता है।

वैसे मैं अपनी इस गलती को महसूस करता हूं कि मेरी पहले की किताबों में कुछ ऐसे मॉडल दिए हैं जिन्हें मैंने भी बनाकर नहीं देखा लेकिन मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इनमें गलती होने की संभावना नहीं है। वैसे यह सच है कि खुद प्रायोगिक मॉडल बनाकर देखने से बेहतर दूसरा कोई रास्ता नहीं है; आखिर अनुभव बेशकीमती चीज़ है।

यहां *'व्हाय टोस्ट लैंड्स जेली साइड डाउन'* किताब में से दो प्रयोग दिए जा रहे हैं और साथ ही उनके पीछे मौजूद सिद्धांतों की जांच-पड़ताल भी की जा रही है।

प्रयोग—1

स्ट्रॉ की मदद से बोतल में से पानी पीना जितना आसान लगता है उतना आसान है नहीं!

ज़रूरी सामान: खूब सारी स्ट्रॉ पाइप, सेलो टेप, एक गिलास पानी, एक प्लास्टिक की बोतल जिसका ढक्कन अच्छे से बंद होता हो। इस ढक्कन में एक इतना ही बड़ा छेद बनाना है जिसमें एक स्ट्रॉ पाइप फंसाया जा सके।

आप जब स्ट्रॉ से कोई तरल पदार्थ पीते हैं तब तरल पदार्थ की ऊपरी सतह पर लगने वाले दबाव के कारण तरल स्ट्रॉ में चढ़ता है। स्ट्रॉ में द्रव पदार्थ ऊपर चढ़कर मुंह तक आए इसके लिए ज़रूरी है कि आपके मुंह

में दबाव, तरल पदार्थ की ऊपरी सतह पर लगने वाले दबाव से कम हो। या दूसरे शब्दों में तरल पदार्थ की ऊपरी सतह पर लग रहा दबाव ज़्यादा होना चाहिए। कम-से-कम इतना ज़्यादा तो होना ही चाहिए जितना स्ट्रॉ में चढ़े द्रव के वज़न से दबाव बन रहा है। इस बात को आप चार अलग-अलग तरीके से दिखा सकते हैं।

सबसे पहले एक गिलास में पानी लीजिए। इस पानी को स्ट्रॉ से तो पी ही सकते हैं। फिर इस पहली स्ट्रॉ पर एक और स्ट्रॉ जोड़ दीजिए, चिपका दीजिए। दोनों स्ट्रॉ चिपकाते समय इस बात का ध्यान रखिए कि कोई छेद या दरार न रह जाए। अब इस स्ट्रॉ से पानी पीकर देखिए। फिर से एक और स्ट्रॉ जोड़ दीजिए, चिपका दीजिए.... इस तरह एक-एक स्ट्रॉ चिपकाते जाइए और गिलास से पानी पीकर देखते जाइए कि कितनी ज़्यादा-से-ज़्यादा ऊंचाई से आप स्ट्रॉ की मदद से पानी खींच सकते हैं।

1. वायु मंडलीय दाब यानी 10 मीटर ऊंचे पानी के स्तंभ का दबाव। यदि आप एक मीटर लंबे स्ट्रॉ से गिलास का पानी पी सकें तो इसका मतलब यह हुआ कि आपके मुंह के भीतर का दबाव वायु मंडलीय दबाव के 1/10 हिस्से तक कम हो गया है। यानी दसवां हिस्सा कम हो गया है। इसी तरह जैसे-जैसे आपके स्ट्रॉ की लंबाई एक-एक मीटर बढ़ते जाएगी वैसे-वैसे आपके मुंह के भीतर 1/10, 1/10 वायुमंडलीय दबाव कम होता जाना चाहिए। वैसे आप इस बात को जल्द समझ जाएंगे कि एक खास ऊंचाई के बाद पानी पी पाना संभव नहीं हो पाएगा।
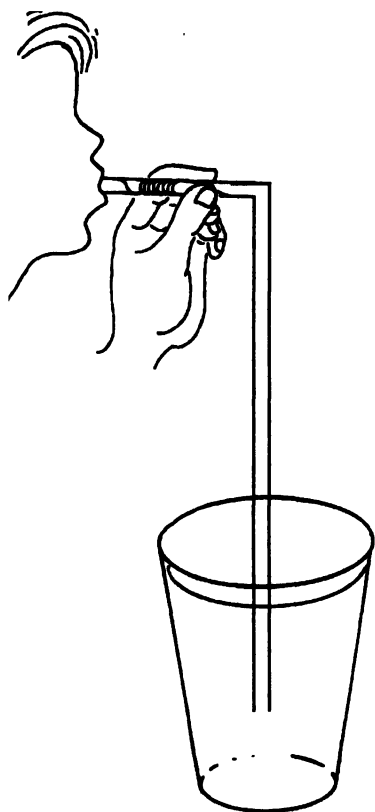
2. मुंह में दो स्ट्रॉ पकड़िए। एक स्ट्रॉ पानी में डुबोइए तथा दूसरा स्ट्रॉ हवा में ही रहने दीजिए। अब आप पानी में डूबे स्ट्रॉ से पानी को खींचिए। आप कितनी भी ज़ोर-आज़माइश कर लीजिए आप पानी नहीं पी सकेंगे। शायद वजह आप भी समझ गए होंगे कि एक स्ट्रॉ हवा में खुला होने की वजह से आपके मुंह का संपर्क वायु मंडल से है, इसलिए वायुमंडलीय दबाव से कम दबाव मुंह में कभी बन ही नहीं सकता।

3. प्लास्टिक की बोतल में थोड़ा पानी लीजिए। बोतल के ढक्कन में एक इतना बड़ा छेद बनाइए जिसमें सिर्फ स्ट्रॉ पाईप ही फंसाया जा सके। अब आप स्ट्रॉ से पानी पीकर देखिए। लेकिन आप ज़्यादा पानी नहीं पी पाएंगे क्योंकि बोतल में से थोड़ा पानी पीने के बाद बोतल में मौजूद हवा फैल जाएगी, और बोतल के पानी पर लग रहा दबाव कम हो जाएगा। कुछ ही देर के बाद बोतल के भीतर के दबाव से कम दबाव मुंह में बना पाना आपके लिए मुश्किल हो जाएगा।

4. इस प्रयोग को आप फ्रूटी के डिब्बे के साथ करके देख सकते हैं। यदि फ्रूटी के डिब्बे में स्ट्रॉ फंसाने के बाद आप बिना रुके फ्रूटी पीते जाएं तो धीरे-धीरे डिब्बा पिचकने लगता है, लेकिन एक खास सीमा पर आकर डिब्बे में से फ्रूटी का मुंह में आना बंद हो जाएगा। खैर, आप स्ट्रॉ से अपना मुंह हटा लीजिए, हवा को भीतर जाने दीजिए – अब फिर से स्ट्रॉ से आप फ्रूटी पी सकते हैं।

प्रयोग–2

जैम लगाया हुआ ब्रेड का टुकड़ा जब टेबल पर से ज़मीन पर गिरता है तो जैम वाला हिस्सा ही ज़मीन छूता है।

ज़रूरी सामान: सिका हुआ ब्रेड का टुकड़ा, एक एल्यूमीनियम की पन्नी।

यदि मेज़ से गिर जाने पर ब्रेड का जैम लगा हिस्सा ही ज़मीन को छूता है तो इसके लिए कोई बदकिस्मती नहीं वरन् न्यूटन के नियम ज़िम्मेदार हैं। जब भी ब्रेड का टुकड़ा टेबल पर से फिसलकर गिरता है तो उसे कोणीय गति मिलती है और वह गिरते-गिरते अपने इर्द-गिर्द घूमने लगता है। यह कोणीय गति, फिसलते समय ब्रेड के टुकड़े और टेबल की सतह के बीच के कोण पर निर्भर करती है। सामान्यतः यह कोण 30 डिग्री का होता है। यदि कोण इससे कम होगा तो ब्रेड का टुकड़ा गिरेगा ही नहीं। किसी समतल पटिए पर ब्रेड का टुकड़ा रखकर, पटिए को तिरछा करके आप देख सकते हैं कि ब्रेड का टुकड़ा कब गिरता है।

ये सब बातें जितनी आसान लगती हैं उतनी आसान हैं नहीं। क्योंकि गिरते हुए टुकड़े का जड़त्व आघूर्ण (Moment of Inertia) और गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से उस पर कार्य करने वाला घूर्णन (Torque) ये दोनों समय के साथ-साथ बदलते जाते हैं। इन सब बातों पर सोच-विचार करके यह पता करने के लिए कि गिरते समय ब्रेड का टुकड़ा कितनी बार हवा में घूमेगा, हम अंत में इस सूत्र तक पहुंचते हैं* –

$$1.59\sqrt{2h/g}+0.083$$

यहां पर h मेज़ की ऊंचाई है एवं g गुरुत्व त्वरण।

इस सूत्र की मदद से हम किसी भी ऊंचाई के टेबिल पर से गिरता हुआ ब्रेड का टुकड़ा हवा में कितने चक्कर काटने के बाद गिरेगा यह बता सकते हैं।

ब्रेड के टुकड़े की एक सतह पर जैम लगाने से उस सतह का द्रव्यमान थोड़ा बढ़ जाता है। इस प्रयोग को करके देखने के लिए हम ब्रेड का एक सिका हुआ टुकड़ा लेंगे और उसकी एक सतह पर एल्यूमीनियम की पन्नी लगाएंगे (यदि हम इस प्रयोग में हर बार ब्रेड का टुकड़ा और जैम इस्तेमाल करेंगे तो काफी सारा जैम और ब्रेड बरबाद हो जाएगा)। इस तरह बन गया हमारा जैम लगा टुकड़ा।

** हम कोणीय वेग पता करने से शुरुआत करते हैं* $W = 0.956\sqrt{g/L}$
यहां g गुरुत्वाकर्षण के कारण निर्मित होने वाला त्वरण है और L ब्रेड के टुकड़े की लंबाई है। 30 डिग्री का कोण बनने पर ब्रेड का टुकड़ा फिसलने लगता है ऐसा मान लें तो 3.5 इंच (8.9 सेमी) चौड़े ब्रेड के टुकड़े का कोणीय वेग 1.59 चक्कर/सेकेंड आता है। यदि टेबल की ऊंचाई h हो तो टेबल से ज़मीन तक पहुंचने में लगने वाला समय होगा:
न्यूटन के नियमानुसार $S = ut + \frac{1}{2}at^2$
(S – विस्थापन, u – प्रारम्भिक वेग, a – त्वरण, t – समय)
हमारे प्रयोग में विस्थापन टेबल की ऊंचाई के बराबर होगा, प्रारंभिक वेग शून्य है और त्वरण गुरुत्वाकर्षण बल से निर्मित होता है। इसलिए $t = \sqrt{2h/g}$
ज़मीन पर गिरने से पहले यह टुकड़ा अपने चारों ओर Wt *चक्कर लगाता है, शुरुआती कोण था 30 डिग्री यानी 0.083 चक्कर (360 डिग्री यानी एक चक्कर तो 30 डिग्री का कोण होने पर 30/360 चक्कर)।*
टेबल की सतह से ज़मीन तक आते-आते t समय में ब्रेड का टुकड़ा कुल जितने चक्कर लगा पाता है उसका सूत्र इस प्रकार मिलेगा।
एक सेकंड में 1.59 चक्कर तो t समय में 1.59 t चक्कर, और उसमें शुरूआती 30 डिग्री के कोण की वजह से 0.083 चक्कर और मिलाने पड़ेंगे।
अर्थात $1.59\,t + 0.083$ *चक्कर*
t का मूल्य समीकरण में डालने पर $1.59\sqrt{2h/g} + 0.083$
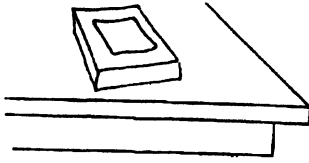
प्रयोग के लिए ब्रेड के इस टुकड़े को जैम वाली सतह ऊपर रखकर समतल लकड़ी के पटिए पर से धीरे से नीचे गिराते हैं। साथ दी गई तालिका में चार अलग-अलग ऊंचाइयों से टुकड़े को गिराते हुए लिए गए अवलोकन दिए गए हैं। इनमें पहले कॉलम में लकड़ी के पटिए यानी मेज़ की ऊंचाई दी है तो आखिरी कॉलम में हरेक ऊंचाई के लिए ब्रेड का टुकड़ा कितने चक्कर लगाएगा यह बताया गया है (तालिका अगले पेज पर)। वैसे यह जानकारी पहले बताए सूत्र से आसानी से मिल जाती है। बीच के तीन कॉलम में प्रयोग के निष्कर्ष दिए गए हैं। यहां 'ऊपर' यानी ब्रेड का टुकड़ा ज़मीन पर गिरने के बाद जैम वाला हिस्सा कितनी बार ऊपर की ओर था। 'नीचे' यानी टुकड़ा गिरने के बाद जैम वाला हिस्सा कितनी बार नीचे था। और 'उछाल' यानी ब्रेड का टुकड़ा नीचे गिरने के बाद पल्टी खा गया।

इस तालिका को देखकर समझ में आता है कि सबसे कम ऊंचाई के लिए ब्रेड का टुकड़ा आधा चक्कर लगाकर जब ज़मीन पर गिरता है तो जैम वाली सतह ज़मीन छू लेती है। सूत्र से गणना और प्रयोग के अवलोकन दोनों में एकरूपता है। सबसे ज़्यादा ऊंचाई के लिए ब्रेड का टुकड़ा लगभग एक पूरा चक्कर लगाकर ज़मीन पर गिरता है तब उसकी जैम वाली सतह ऊपर होती है। बीच की दो ऊंचाइयों में लगभग पौन चक्कर लगाकर ब्रेड का टुकड़ा अक्सर किनार पर गिरता है इसलिए उसके उछलने और पल्टी खाने की संभावना काफी ज़्यादा होती है।

हमारे घरों में जो टेबिल इस्तेमाल

तालिकाः विभिन्न ऊंचाइयों से गिरता ब्रेड का टुकड़ा

ऊंचाई (मीटर में)	ऊपर	नीचे	पल्टा	चक्करों की संख्या
0.470	0	20	1	0.57
0.775	14	4	33	0.72
0.940	9	8	18	0.78
1.105	20	0	6	0.84

तालिका देखकर यह साफतौर पर समझ में आता है कि ऊंचाई लगभग आधा मीटर हो तो टोस्ट का जैम वाला हिस्सा ही नीचे की तरफ गिरेगा और टोस्ट पल्टी भी नहीं खाएगा। ऊंचाई 0.8 मीटर के करीब हो टोस्ट का सूखा हिस्सा ज़मीन को छुएगा परन्तु गिरने के बाद उसके पलट जाने की संभावना ज़्यादा होती है, इसलिए ज़्यादातर जैम वाला हिस्सा ही ज़मीन को छूता मिलेगा। यदि टेबल की ऊंचाई एक मीटर के करीब हो तो जैम वाला हिस्सा ज़मीन की तरफ होने की और पल्टी खाने की संभावना कम होने लगती है।

होते हैं उनकी ऊंचाई तालिका की बीच वाली ऊंचाइयों के आसपास होती है। फिर ऐसे में अभी तक की चर्चा के आधार पर क्या कहा जा सकता है? तालिका से समझ में आता है कि इन ऊंचाइयों के टेबल से गिरने वाले टोस्ट का अक्सर सूखा हिस्सा ज़मीन को छुएगा परन्तु गिरने के बाद उसके पलट जाने की संभावना काफी ज़्यादा होती है; इसलिए अंत में इस ऊंचाई से टोस्ट गिरने की ज़्यादातर घटनाओं में जैम वाला हिस्सा ही ज़मीन को छूता मिलेगा। इसमें एक और बात पर गौर करना चाहिए कि अगर सूखा हिस्सा ज़मीन से टकराएगा तो उसके उचक कर पलट जाने की संभावना अधिक है, बनिस्बत दूसरी स्थिति के जब जैम वाला हिस्सा ज़मीन पर टकराता है क्योंकि चिपचिपा होने के कारण वह शायद उतनी आसानी से नहीं पलटेगा।

तालिका से यह भी स्पष्ट है कि यदि टेबल की ऊंचाई एक मीटर के करीब हो तो जैम वाला हिस्सा ज़मीन की तरफ होने की संभावना कम होने लगती है।

आप भी चाहें तो इस प्रयोग को करके देख सकते हैं – काफी मज़ेदार गतिविधि साबित हो सकती है यह।

प्रियदर्शिनी कर्वे: सिंहगढ़ कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग पुणे में पढ़ाती हैं। मराठी संदर्भ के सम्पादन मंडल की सदस्य हैं।

यह लेख मराठी संदर्भ अंकः 7, अगस्त-सितंबर 2000 से साभार। **अनुवादः माधव केलकर।**

सवालीराम

सवालः चांद क्या है, और किसका बना है?

जवाबः आज से 150 साल पहले तक चांद के बारे में यह धारणा थी कि वो धरती से टूटकर बना है। उन दिनों यह माना जाता था कि आज जहां प्रशांत महासागर है वहां का हिस्सा ही बाहर निकलकर चांद बन गया होगा।

जब इंसान के कदम चांद पर पड़े तो वहां से बड़ी तादाद में मिट्टी, चट्टानों के टुकड़े आदि लाए गए। उनका परीक्षण किया गया तो समझ में आया कि चांद कुछ मामलों में धरती से अलग है। जब चट्टानों की उम्र पता की गई तो मालूम चला कि चांद भी लगभग उतना ही पुराना है जितनी धरती, लेकिन यह धरती का टुकड़ा वगैरह नहीं है।

चांद की सतह पर बड़े-बड़े मैदान हैं, पहाड़ हैं, गहरे-गहरे गड्ढे हैं। सतह पर ढेर सारी रेतीली मिट्टी बिखरी हुई है जिसकी मोटाई कुछ जगह कुछ मीटर तक है। इसे रिगोलिथ कहा जाता है। धरती की ही तरह चांद पर भी अलग-अलग चट्टानी परतें हैं, लेकिन एक खास बात यह है कि वहां चूना-पत्थर या बालू-पत्थर जैसी अवसादी चट्टानें नहीं पाई जाती। सबसे ऊपरी परत है – क्रस्ट। जिसकी मोटाई 60 किलोमीटर से 120 किलोमीटर तक है। यह मुख्य रूप से बेसाल्ट, गैब्रो, एनार्थोसाइट जैसी आग्नेय चट्टानों से मिलकर बनी हुई है। इसके बाद चांद की अंदरुनी परत है जो ओलिवीन (मैग्निशियम व लौह की मात्रा अधिक हो ऐसी चट्टानें) की अधिकता वाली चट्टानों से बनी है। चांद में लोहे-निकिल से बना कोर या केन्द्रीय भाग है या नहीं इसके बारे में कोई पक्की जानकारी नहीं है।
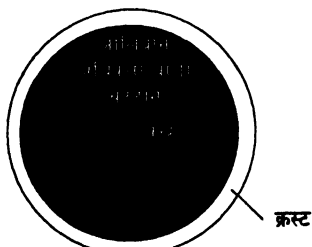
किसी समय चांद पर सक्रिय ज्वालामुखी होते थे और लावा से बने समतल मैदान अभी भी पाए जाते हैं। लेकिन अब वहां कोई भी ज्वालामुखी नहीं है।

कुल मिलाकर चांद धरती के चारों ओर घूमने वाला एक उपग्रह है और हमारे सौर्य मंडल को समझने में हमारी काफी मदद करता है।

केन्द्रीय भाग के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है।

सवाल: सेल में क्या है जिससे बल्ब जलता है?

जवाब: यहां हम यह मानकर चल रहे हैं कि सेल से आपका आशय टॉर्च वगैरह में इस्तेमाल होने वाले ड्राई सेल से ही है।

सेल या बैटरी एक ऐसा तरीका है जिससे रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जाता है। आमतौर पर सेल या बैटरी में धन और ऋण ध्रुव की प्लेट के अलावा कुछ रसायन भरे होते हैं जिनकी आपसी क्रिया की वजह से विद्युत बनती है और परिपथ से होकर बहती है। सेल में भरे गए रासायनिक पदार्थों को इलेक्ट्रोलाइट कहते हैं यानी वे यौगिक जिनको बनाने वाले अणुओं में इलेक्ट्रॉन का आदान-प्रदान होता है।

यदि सेल के बारे में और बारीकी से जानना हो तो अपने घर मौजूद कोई पुराना सेल (जो टॉर्च वगैरह में इस्तेमाल होता है) को खोलकर देखना होगा। सेल का खोल हटाने पर एक ज़िंक का बर्तन दिखने लगता है। इस बर्तन में कागज़ की जाली में इलेक्ट्रोलाइट का पेस्ट भरा होता है। जिसे अमोनियम क्लोराइड और ज़िंक क्लोराइड को पानी के साथ मिलाकर बनाया जाता है। इस पेस्ट के बीच में कार्बन की छड़ और मैंगनीज़ डाइ ऑक्साइड का पाउडर रखा होता है।

अब यह देखें कि सेल को परिपथ में जोड़ने पर इससे विद्युत धारा कैसे बनती है। सेल में ज़िंक का बर्तन (ऋण ध्रुव) अमोनियम क्लोराइड की गीली पेस्ट से क्रिया करके ज़िंक आयन बनाता है। इस क्रिया में इलेक्ट्रॉन मुक्त होते हैं जो सेल के बाहरी परिपथ से होते हुए कार्बन की छड़ (धन ध्रुव) तक पहुंचते हैं; यहां मैंगनीज़ डाइ ऑक्साइड इन इलेक्ट्रॉनों को ग्रहण करता है। जिससे यहां भी रासायनिक क्रिया होती है और OH^- आयन एक कागज़ की जाली पार कर अमोनियम क्लोराइड से क्रिया करके अमोनिया गैस बनाते हैं।

यह क्रिया बीच में रुक सकती है अगर बाहरी परिपथ में किसी तरह की रुकावट आ जाए या परिपथ टूट गया हो; ऐसी स्थिति में इलेक्ट्रॉन आगे नहीं जा पाएंगे। इस स्थिति में ज़िंक के खोल पर इलेक्ट्रॉन इकट्ठे होने लगेंगे और ज़िंक की अमोनियम क्लोराइड से क्रिया रुक जाएगी। जैसे ही परिपथ दुबारा पूरा होता है विद्युत धारा फिर से बहने लगती है।

इन दोनों सवालों को सिपिका वर्मा, इटारसी और ब्रजेश साहू, पचमढ़ी ने पूछा था। शेष सवालों के जवाब आगामी अंक में दिए जाएंगे।

४० दिन में

पिछली किश्त में आपने पढ़ा कि फिलिस फॉग और उनके साथी हाथी पर सवार होकर विंध्याचल के घने जंगलों से गुज़रते हुए इलाहाबाद की ओर बढ़ रहे थे। रास्ते में वे देखते हैं कि बुंदेलखंड के एक राजा की चिता पर उसकी पत्नी को ज़बरदस्ती सती बनाया जा रहा है। फिलिस फॉग और उनके साथी उस महिला को बचाने की ठान लेते हैं। वे मंदिर की दीवार में सेंध लगाकर उस महिला को बाहर निकालने की कोशिश करते हैं लेकिन कामयाब नहीं होते। फिर पासपार्टआउट की बहादुरी की वजह से महिला को जलती चिता पर से बचाकर इलाहाबाद की ओर भाग खड़े होते हैं। अब उनके आगे के सफर के बारे में पढ़िए।

साहसी अपहरण सफल रहा था।

एक घंटे बाद भी घटना को याद करके पासपार्टआउट मुस्कुरा रहा था। सर फ्रांसिस ने उससे ज़ोरों से हाथ मिलाया था। उसके मालिक ने तो बस इतना भर कहा था, "बहुत बढ़िया।" परंतु इस तरह की शख्सियत का तो इतना कहना भी बहुत प्रशंसनीय था। जिस पर पासपार्टआउट ने कहा था कि इसके पीछे असली श्रेय तो उसके मालिक को ही जाता है। उसे तो बस वो 'विलक्षण' विचार भा गया था – उसका रोल तो इतना भर था। उसे तो यही सोच कर हंसी आ रही थी कि कुछ समय के लिए मृत्यु ने उसे इस मनोहारी औरत से जुदा कर दिया था, और फिर उसके यानी बूढ़े राजा के शव को सुरक्षित रखने के लिए लेपन कर दिया गया।

जहां तक उस महिला का सवाल था, उसे तो बिल्कुल भी सुध नहीं थी कि दरअसल हुआ क्या था। वो कंबलों में लिपटी, हाथी के ऊपर बंधे एक हौदे में अभी भी बेसुध पड़ी हुई थी।

इस बीच पारसी महावत की कुशलता की वजह से हाथी जंगल में से तेज़ी से आगे बढ़ता जा रहा था। पिल्लगी के मंदिर को पीछे छोड़े हुए एक घंटा गुज़र चुका था, अभी भी अंधेरा पूरी तरह से हटा नहीं था; हाथी की रफ्तार बरकरार थी, सात बजे उन्होंने पड़ाव डाला। चूंकि वो औरत अभी भी चित्त पड़ी हुई थी, गाइड ने उसे थोड़ी ब्रांडी और पानी पिलाया परंतु वो अभी कुछ देर और बेसुध रहने वाली थी। सर फ्रांसिस

उसकी ऐसी हालत से खास चिंतित नहीं थे क्योंकि वे जानते थे कि गांजे के सुट्टों से कैसी मदहोशी छा जाती है। उन्हें यकीन था कि कुछ समय बाद वो होश में आ जाएगी परंतु वे उसके भविष्य के बारे में कतई विश्वस्त नहीं थे। उन्होंने फिलिस फॉग को स्पष्टतः बता दिया था कि अगर औदा हिन्दुस्तान में रही, तो वो उन जल्लादों के हाथ फिर से लग जाएगी। ये धर्मान्ध पूरे प्रायद्वीप में फैले हुए हैं और अंग्रेज़ पुलिस के बावजूद वे अपने शिकार को फिर से दबोच लेंगे चाहे वह मद्रास में हो, बंबई में या कलकत्ता में। अपनी राय के समर्थन में उन्हीं दिनों घटा ऐसा ही एक किस्सा भी उन्होंने बयान किया। उनका मत था कि वो हिन्दुस्तान छोड़कर ही सुरक्षित हो सकती है।

फिलिस फॉग ने कहा कि वो इस बात का ख्याल रखेगा और देखेगा कि क्या हो सकता है। दस बजे तक गाइड ने उन्हें इलाहाबाद पहुंचा दिया जहां से रेल लाईन फिर से शुरू हो जाती थी, इलाहाबाद से कलकत्ता पहुंचने में ट्रेन को बमुश्किल चौबीस घंटे लगते थे। इसलिए फिलिस फॉग अभी भी अगले दिन यानी 25 अक्टूबर की दोपहर को हांगकांग के लिए रवाना होने वाला जहाज़ पकड़ने के लिए सही वक्त पर कलकत्ता पहुंच सकते थे।

उस औरत को स्टेशन के एक कमरे में ठहराया गया और पासपार्टआउट को ज़िम्मेदारी दी गई कि वो उसके लिए ज़रूरी सब सामान का बंदोबस्त करे जैसे पहनने के कपड़े, शॉल, और जो भी कुछ ज़रूरी हो। अपने काम को अंजाम देने के लिए पासपार्टआउट तुरंत रवाना हो गया और 'ईश्वर के शहर' इलाहाबाद की गलियों में उसने तलाश शुरू कर दी। गंगा और यमुना के संगम पर स्थित होने की वजह से हिन्दुस्तान में यह शहर अत्यंत पवित्र और पूज्य माना जाता है और प्रायद्वीप के हर कोने से लोग यहां नहाने के लिए आते हैं। रामायण की कथा के अनुसार गंगा स्वर्ग से शुरू होती है और शिव की जटाओं के ज़रिए धरती पर उतरती है।

खरीददारी करते हुए पासपार्टआउट ने शहर के बहुत से हिस्से छान मारे। पहले शहर की सुरक्षा के लिए एक किला होता था जिसे अब जेल में तब्दील कर दिया गया था। इलाहाबाद जो कभी व्यापार और उद्योग का केन्द्र होता था अब दोनों से महरूम है। बहुत खोजने के बाद पासपार्टआउट को जो सब चाहिए था वह एक बुजुर्ग यहूदी की पुराने कपड़ों की दुकान में मिल गया। वहां से उसने स्कॉच की एक ड्रेस, एक बड़ा-सा गाऊन और

ऊदबिलाव के चमड़े का एक खूबसूरत कोट खरीदा; और इन सबके लिए बेहिचक पचहत्तर पाऊंड दे दिए। अपनी इस खरीदी से खुश वो स्टेशन की ओर लौट चला।

पिल्लगी के मंदिर के पुजारियों द्वारा पिलाए गए नशीले पदार्थों का असर कम होने पर औदा को होश आने लगा था और उसकी खूबसूरत आंखें धीरे-धीरे अपनी हिन्दुस्तानी कोमलता अख्तियार कर रही थीं। बिना किसी काव्यमयी उपमाओं का इस्तेमाल करते हुए भी यह तो कहा ही जा सकता था कि बुंदेलखंड के राजा की यह विधवा बेहद खूबसूरत थी।

वो एकदम फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोल लेती थी। पारसी महावत ने उसके बारे में जो बताया था कि उसके लालन-पालन से वो एकदम बदल गई थी, इस कथन में बिल्कुल भी अतिशयोक्ति नहीं थी।

गाड़ी अब इलाहाबाद से छूटने ही वाली थी। पारसी गाइड को उसका मेहनताना चुका दिया गया। मिस्टर फॉग ने उसको उतने ही पैसे दिए जितने तय किए गए थे। पासपार्टआउट को यह देखकर हैरानी हुई क्योंकि इस महावत की वजह से ही तो उसका मालिक यहां तक पहुंच पाया था। यहां तक कि पिल्लगी कांड में तो उस पारसी ने अपनी जान ही दांव पर लगा दी थी; और अगर हिन्दुओं को बाद में भी इसका पता चल जाए तो उसकी जान को खतरा बन जाएगा।

अगला काम था किऔनी का निपटारा। ऐसे दाम पर खरीदे गए हाथी का क्या किया जाएगा? परंतु फिलिस फॉग ने तो इसका भी हल
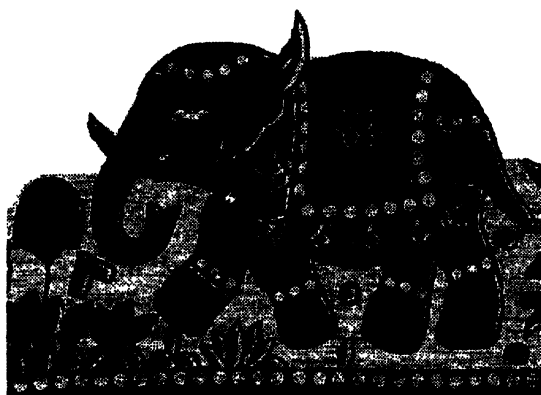
निकाल लिया था। उसने गाइड से कहा, "तुम बहुत काम आए हो और अत्यन्त निष्ठावान रहे हो। मैंने तुम्हारे काम के पैसे तो चुका दिए परंतु तुम्हारी कर्तव्यनिष्ठा के नहीं। क्या तुम हाथी को रखना चाहोगे? अगर चाहो, तो वह अब तुम्हारा है।"

गाइड की आंखें खुशी से चमक उठीं। "आपने तो मुझे खज़ाना थमा दिया है," वो बोल उठा।

"मेरी पेशकश को कुबूल करो।" मिस्टर फॉग ने आगे कहा, "मैं फिर भी तुम्हारा अहसानमंद रहूंगा।"

"बहुत खूब!" पासपार्टआउट ने कहा, "दोस्त उसे ले जाओ! किऔनी बहुत ही बढ़िया और बहादुर जानवर है।" फिर उसने किऔनी की तरफ बढ़कर गुड़ के कुछ टुकड़े दिए। किऔनी ने पासपार्टआउट की कमर अपनी सूंड में लपेटकर उसे एकदम ऊपर उठा लिया। पासपार्टआउट ने बिना घबराए हाथी को थपथपाया और हाथी ने उसे सुरक्षित नीचे उतार दिया।

**

चंद मिनटों बाद फिलिस फॉग, सर फ्रांसिस, पासपार्टआउट और सबसे बेहतरीन सीट पर बैठी औदा, सब बनारस की तरफ तीव्र गति से बढ़े जा रहे थे। इलाहाबाद से इस शहर की दूरी अस्सी मील थी और इसे तय करने में उन्हें दो घंटे लगे।

इस यात्रा के दौरान वो हिन्दुस्तानी महिला पूरी तरह होश में आ गई – भांग का असर खत्म हो चुका था। अपने आपको अजनबियों के संग, यूरोपियन कपड़ों में, एक रेल के डिब्बे में बैठा पाकर उसकी हैरानी की कोई सीमा ही नहीं थी।

उनकी पहली कोशिश यही थी कि वो पूरी तरह से संभल जाए व होश में आ जाए, इसलिए उन्होंने उसे कई बार मदिरा की कुछ बूंदें पिलाई। फिर ब्रिगेडियर ने उसे पूरा किस्सा सुनाया। उसने फिलिस फॉग की लगन के बारे में बताया जो उसकी जान बचाने के लिए अपने आपको दांव पर लगाने में बिल्कुल भी नहीं हिचकिचाया; पासपार्टआउट की उस दिलेर चाल का वर्णन किया जिससे इस जोखिम-भरी घटना का खुशगवार अंत हो पाया।

इस बीच मिस्टर फॉग एक शब्द भी नहीं बोले जबकि शर्माते हुए पासपार्टआउट ने कई बार कहा, "इसका ज़िक्र ज़रूरी नहीं है। मैंने तो कुछ भी नहीं किया।"

औदा उसे मौत के चंगुल से बचाने वाले इन सबकी अत्यंत शुक्रगुज़ार थी, और शब्दों के बजाए बार-बार टपक रहे उसके आंसू और उसकी चमकती

गाड़ी साढ़े बारह बजे बनारस पहुंची। ब्राह्मण किवदंतियां कहती हैं कि यह शहर वहीं बसा है जहां पहले कभी काशी हुआ करता था और माना जाता था कि मुहम्मद के मकबरे की तरह काशी भी नभ और पाताल के बीच अधर में लटका रहता था। परंतु पूर्व का एथेन्स माना जाने वाला बनारस अन्य सामान्य शहरों की तरह अब तो धरती पर ही टिका हुआ है। बनारस से गुज़रते हुए गाड़ी में बैठे-बैठे पासपार्टआउट को ईंटों के बने घर और घास-फूस व बांस-खपच्चियों की झोपड़ियां दिखाई दीं। ऐसा लग ही नहीं रहा था कि शहर का अपना कोई रंग है, वीरान व सुनसान नज़र आ रहा था यह शहर।

सर फ्रांसिस बनारस से आगे नहीं जाने वाले थे क्योंकि सेना की जिस टुकड़ी तक उन्हें पहुंचना था वो बनारस

आंखें उसकी भावनाओं को कहीं बेहतर व्यक्त कर रहे थे। फिर जैसे ही उसे 'सती' के वे सब दृश्य याद आए और गाड़ी से बाहर उसने हिन्दुस्तान की धरती की तरफ देखा जहां अभी भी उसे वैसी ही मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता था; वो आतंकित होकर कांपने लगी।

उसके मन में उठ रहे विचारों को भांपते हुए फिलिस फॉग ने अपने भावना विहीन लहज़े में कहा कि अगर वह चाहे तो वे उसे हांगकांग तक लेकर जा सकते हैं और इस आंधी के गुज़र जाने तक वो वहां रह सकती है।

इस सुझाव को उसने तुरंत मान लिया। दरअसल औदा का एक पारसी रिश्तेदार हांगकांग में रहता था और शहर का एक समृद्ध व्यापारी था। हांगकांग चीन के तट के नज़दीक होने के बावजूद एक अंग्रेज़ शहर की मानिंद ही है।
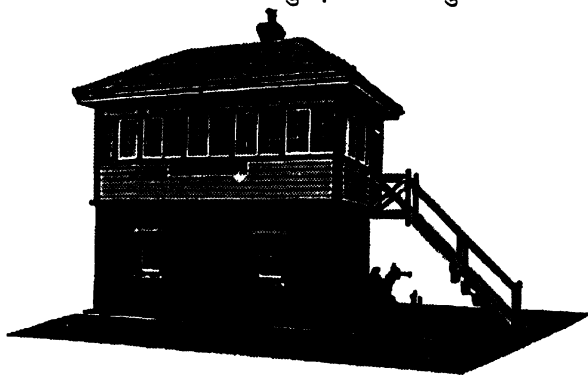
से कुछ मील दूर उत्तर की ओर अपना केम्प लगाए हुए थी। इसलिए उन्होंने फिलिस फॉग को अलविदा कहा और इस यात्रा की सफलता के लिए ढेरों शुभकामनाएं दीं। उन्होंने फिलिस फॉग को सामान्य स्थितियों में फिर से हिन्दुस्तान आने का निमंत्रण भी दिया। बदले में मिस्टर फॉग ने उनकी अंगुलियों को हल्के से छुआ भर। औदा की सर फ्रांसिस से विदाई ज़्यादा भावनापूर्ण थी और उसने कहा कि वो उनका अहसान जीवन भर याद रखेगी। जहां तक पासपार्टआउट का सवाल है सर फ्रांसिस ने उसके साथ इतने ज़ोरों से हाथ मिलाया कि वो सोचने लगा कि ब्रिगेडियर के लिए अपनी जान दांव पर लगाने का मौका कब मिलेगा।

यह सब होने पर सर फ्रांसिस क्रोमेरटी चल दिए।

**

बनारस के बाद गाड़ी कुछ समय तक गंगा की घाटी में चलती है। चूंकि मौसम एकदम साफ था इसलिए यात्री अपने डिब्बे की खिड़कियों में से बिहार का विविधतापूर्ण परिदृश्य देख पा रहे थे। हरियाली से ढंके पहाड़; जौ, मक्का और गेहूं के खेत; मटमैले मगरमच्छों व घड़ियालों से भरे हुए तालाब और नदियां; सुंदर-सलौने गांव और अभी-भी हरा-भरा जंगल। चंद हाथी और सांड़ उस पवित्र नदी में नहाने चले आए थे, और तेज़ ठंड व कम तापमान के बावजूद हिन्दुस्तानियों की टोलियां इस नदी में पूजा व स्नान करने में जुटी हुई थीं। ये उपासक जो बौध धर्म के शत्रु हैं, ब्राह्मण धर्म मानते हैं जिसके प्रमुख देवता होते हैं – सूर्य देवता, विष्णु, प्राकृतिक शक्तियों का देवता शिव और पुजारियों का सर्वोत्तम देवता ब्रह्मा। इस पवित्र गंगा में घर-घर-घर करती हुई सफर करती मोटर बोट को चलते देख ब्रह्मा, शिव और विष्णु को कैसा लगता होगा जब ये स्टीमर पक्षियों, कछुओं और नदीतट पर मौजूद भक्तों को परेशान करते हुए पानी को चीरते निकल जाते हैं!

ये सब पल भर में उनके सामने से गुज़र गया और कई बार तो धुंध व कोहरे की वजह से बहुत-सी चीज़ें ध्यान से देख ही नहीं पाए। बनारस से बीस मील दक्षिण -पूर्व में स्थित चुनार का किला उन्हें दिखाई भर दिया जो कभी बिहार के राजाओं का अभेद्य किला होता था। गाज़ीपुर और वहां के मशहूर गुलाब जल के कारखाने; गंगा के बाएं किनारे पर लॉर्ड कॉर्नवालिस का मकबरा; किलेनुमा शहर बक्सर; व्यवसाय/व्यापार और

उत्पादन का प्रमुख केन्द्र पटना जो हिन्दुस्तान में अफीम के व्यापार के लिए मशहूर है; इंग्लैंड के मैनचेस्टर या बरमिंघम जैसा एकदम यूरोपीय दिखने वाला शहर मुंगेर जो ढलवां लोहे के उद्योग के लिए प्रसिद्ध है और जहां की ऊंची-ऊंची चिमनियों से निकल रहा धुआं ब्रह्मा के आकाश में कालिख घोल रहा था।

रात हो गई। गाड़ी ने गुर्रा रहे बाघों, चिलचिला रहे भेड़ियों व भालुओं के बीच से अपनी तेज़ रफ्तार यात्रा जारी रखी। ये सब धड़धड़ाते हुए ईंजन को देखते ही इधर-उधर भाग जाते थे। उसके बाद बंगाल के अन्य अचरज वे नहीं देख पाए – गौर के खंडहर, एक समय की राजधानी मुर्शिदाबाद, बर्दवान, हुगली, चंद्रनगर। चंद्रनगर यानी हिन्दुस्तान में फ्रांस का हिस्सा जहां अपने देश का झंडा फहराता देख पासपार्टआउट खुश हो जाता। रात ने इन सबको अपने आंचल में छुपा लिया था।

वे सुबह सात बजे कलकत्ता पहुंचे और वहां से हांगकांग के लिए रवाना होने वाला स्टीमर बारह बजे किनारा छोड़ने वाला था। फिलिस फॉग के पास पांच घंटे अतिरिक्त थे। उसकी अपनी शुरुआती योजना के अनुसार उसे लंदन से रवाना होने के तेईस दिन बाद यानी 25 अक्टूबर को हिन्दुस्तान की राजधानी पहुंचना था और वो उसी तयशुदा दिन वहां पहुंच गया। इसलिए वह न तो अपने टाइम-टेबिल से पिछड़ रहा था और न ही उससे आगे बढ़ पाया था। लंदन और बंबई के बीच उसने जो दो दिन बचाए थे, जैसा कि हमने देखा, हिन्दुस्तानी प्रायद्वीप से गुज़रते हुए बदकिस्मती से वे उसने फिर से गंवा दिए थे। पर हम यह मान सकते हैं कि इसका फिलिस फॉग को कोई गम नहीं था।

**

जब गाड़ी रुकी तो सबसे पहले पासपार्टआउट उतरा, फिर अपने खूबसूरत साथी को सहारा देते हुए मिस्टर फॉग। फिलिस फॉग का इरादा था कि वे सीधे ही हांगकांग रवाना होने वाले स्टीमर पर जाएंगे ताकि औदा की यात्रा का आरामदेह इंतज़ाम हो सके। वे चिंतित थे इसलिए चाहते थे कि जब तक खतरों से भरे इस देश को वह छोड़ न दे तब तक वे उसके साथ ही रहें।

जैसे ही वे स्टेशन से निकलने वाले थे, एक पुलिस वाले ने उनके पास आकर कहा, "मिस्टर फिलिस फॉग?"

"मेरा ही नाम है।"

"क्या यह व्यक्ति आपका नौकर है।"
"हां।"
"आप दोनों मेरे साथ आएं।"

मिस्टर फॉग बिल्कुल भी हैरान नहीं हुए। यह व्यक्ति कानून का प्रतिनिधि था और सभी अंग्रेज़ों के लिए कानून अत्यन्त सम्मानीय होता है।

फ्रांसिसी होने के नाते पासपार्टआउट ने तर्क करने की कोशिश की, परंतु पुलिसवाले ने छड़ी से उसे थपथपाया; और फिलिस फॉग ने उसे आदेश मानने का इशारा किया।

"क्या यह महिला भी हमारे साथ आ सकती है?" मिस्टर फॉग ने पूछा।

"बेशक।" पुलिस वाले ने जवाब दिया।

मिस्टर फॉग, औदा और पासपार्टआउट को एक पालकी-गाड़ी में ले जाया गया। पालकी-गाड़ी चार लोगों के लिए चार पहियों वाली बग्घी होती है, जो दो घोड़ों द्वारा खींची जाती है। पालकी-गाड़ी में वे तकरीबन बीस मिनट बैठे रहे और इस दौरान कोई कुछ नहीं बोला। पहले वे भीड़ भरी तंग गलियों में से गुज़रे; और फिर ईंटों से बने पक्के घरों, नारियल के पेड़ों व मस्तूलों से भरे यूरोपीय शहर में से। इतनी सुबह के वक्त भी कई नौजवान सजी-धजी पोशाक पहने घुड़सवारी करते हुए इधर-उधर जाते दिखाई दे रहे थे।

पालकी-गाड़ी एक ऐसी इमारत के सामने रुकी जो स्पष्टतः किसी का घर नहीं था। पुलिस वाले ने अपने बंदियों से नीचे उतरने को कहा – बंदी इसलिए क्योंकि उन्हें एक सलाखें लगे कमरे में ले जाया गया और कहा गया, "आपको जज औबेदैय्या के सामने साढ़े आठ बजे पेश किया जाएगा।" यह कहते हुए पुलिस वाले ने कमरे का दरवाज़ा बंद कर दिया।

"अब तो हम फंस गए हैं।" एक कुर्सी पर बैठते हुए पासपार्टआउट ने कहा।

औदा ने अपनी भावनाओं को छुपाने की कोशिश करते हुए मिस्टर फॉग से कहा, "आप मुझे अपनी किस्मत पर छोड़ दें। मेरी वजह से आपको कटघरे में खड़ा किया जा रहा है, क्योंकि आपने मुझे बचाने की कोशिश की।"

फिलिस फॉग ने इतना ही कहा कि यह संभव नहीं है, और यह कि ऐसा मुमकिन नहीं है कि उस पर सती वाले मामले की वजह से मुकदमा चलाया जाएगा क्योंकि अभियोगी सामने आने की हिम्मत ही नहीं कर सकते। कहीं कुछ गलती हुई है। और वैसे भी, वे उसे किसी भी हालत में

साढ़े आठ बजे दरवाज़ा खुला और पुलिसवाला बंदियों को साथ वाले कमरे में ले गया। यही कचहरी थी और जनता के लिए आरक्षित जगह पर बहुत-से यूरोपीय और हिन्दुस्तानी बैठे हुए थे।

मिस्टर फॉग, औदा और पासपार्टआउट मेजिस्ट्रेट व क्लर्क के सामने रखी बैंच पर बैठ गए। तुरंत ही जज औबेदैय्या व उनके पीछे क्लर्क कोर्ट में घुसे। जज काफी हृष्ट-पुष्ट व गोल-मटोल थे। उन्होंने कील से विग उतारी और उसे जल्दी से पहन लिया।

"पहला केस" उसने कहा और फिर अपने सिर को हाथ से छूते ही उसने आश्चर्य से कहा, "यह मेरी विग नहीं है।" "नहीं, माई लॉर्ड, यह मेरी है।" क्लर्क ने जवाब दिया।

"मिस्टर आयस्टरपफ, ज़रा मुझे बताओ कि कोई जज एक मामूली क्लर्क की विग में कोई भी न्यायपूर्ण निर्णय कैसे कर सकता है!"

फिर उन्होंने विग की अदला-बदली कर ली। इस सबको देखते हुए पासपार्टआउट का धैर्य जवाब दे रहा था क्योंकि दीवार पर टंगी घड़ी के

छोड़कर नहीं जाएंगे बल्कि साथ में हांगकांग लेकर ही जाएंगे।

"परंतु स्टीमर तो बारह बजे निकल जाएगा।" पासपार्टआउट ने कहा।

"बारह से पहले हम स्टीमर पर होंगे।" उसके शांतचित्त मालिक ने जवाब दिया।

उस जवाब में इतना विश्वास था कि पासपार्टआउट ने भी अपने आप से कहा, "सही तो है, बारह बजे तक तो हम स्टीमर में होंगे।" परंतु इसके बावजूद वह बिल्कुल निश्चिंत नहीं हुआ।

कांटे उसे अत्यंत तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ते दिखाई दे रहे थे।

"पहला केस" जज औबेदैय्या ने कहा।

"फिलिस फॉग?" क्लर्क ने आवाज़ लगाई।

"यहां हूं।" मिस्टर फॉग ने जवाब दिया।

"पासपार्टआउट।"

"यहां।" पासपार्टआउट चिल्लाया।

"ठीक है।" जज ने जारी रखा, "बंदियों, पिछले दो दिन से पुलिस तुम्हें बंबई से आने वाली हर गाड़ी में ढूंढ रही है।

"हमारे खिलाफ क्या चार्ज लगाया जा रहा है?" अपना धैर्य खोते हुए पासपार्टआउट चिल्लाया।

"अब तुम लोगों को वो बताया जाएगा।", जज ने कहा।

"मैं एक अंग्रेज़ हूं", मिस्टर फॉग ने कहा, "और मुझे हक है कि ....."

"क्या तुम्हारे साथ अभद्र बर्ताव हुआ है?" जज ने पूछा।

"बिल्कुल भी नहीं।"

"ठीक है, मुद्दई को प्रस्तुत किया जाए।"

जज के आदेश पर अदालत का एक दरवाज़ा खुला और तीन पुजारियों को अंदर लाया गया।

"वही हैं।" पासपार्टआउट बुद-बुदाया, "ये वही बदमाश हैं जो इस औरत को जलाने की कोशिश कर रहे थे।"

पुजारी जज के सामने खड़े रहे और क्लर्क ने बुलंद आवाज़ में फिलिस फॉग और पासपार्टआउट के खिलाफ लगाए गए 'अपवित्र करने' के इल्ज़ाम पढ़ने शुरू कर दिए। उनके खिलाफ इल्ज़ाम था कि उन्होंने ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) की पवित्र जगह को अपवित्र किया।

"आप लोगों ने इल्ज़ाम सुना?" जज ने पूछा।

"हां, सुन लिया" मिस्टर फॉग ने घड़ी देखकर जारी रखा, "और हम जुर्म इकबाल करते हैं।"

"आह! इकबाल करते हो?"

"हां, और अब मैं सुनना चाहता हूं कि पिल्लगी के मंदिर में ये पुजारी क्या करने वाले थे।"

पुजारी एक दूसरे की तरफ देखने लगे, उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि आखिरकार यह प्रतिवादी कह क्या रहा है।

"बिल्कुल।" पासपार्टआउट गुस्से में चिल्लाया, "पिल्लगी के मंदिर में, जिसके सामने उस महिला को जलाने वाले थे!"

पुजारी फिर से हैरान थे और जज

ने आश्चर्य से पूछा, "कौन महिला? किसे जलाना? बम्बई में?"

"बम्बई?" पासपार्टआउट ने आश्चर्य से कहा।

"हां, बम्बई। पिल्लगी के मंदिर के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा रहा। यह घटना तो मालाबार हिल के मंदिर की है।"

"सबूत के तौर पर", क्लर्क ने जोड़ा, "ये हैं उस मंदिर को अपवित्र करने वाले के जूते।"

"मेरे जूते!" पासपार्टआउट चिल्ला दिया। वो इतना आश्चर्यचकित था कि अपने आप को रोक नहीं पाया।

मालिक और चाकर को जो भ्रम हो गया वो स्वाभाविक ही था। वे बम्बई के मंदिर की इस घटना को बिल्कुल भूल चुके थे जिसके लिए अब उन्हें कलकत्ता के मेजिस्ट्रेट के सम्मुख अपराधी के रूप में प्रस्तुत होना पड़ा था।

बम्बई के मंदिर की घटना से बहुत फायदा हो सकता है यह समझकर जासूस फिक्स ने अपनी यात्रा बारह घंटे के लिए मुल्तवी कर दी थी; और उस दौरान उसने मालाबार के मंदिर के पुजारियों को बताया कि उन्हें भारी हर्जाना मिल सकता है चूंकि अंग्रेज़ सरकार इस तरह के अपराध के प्रति अत्यंत सख्ती से पेश आती है। अगला कदम उसने यह उठाया कि मुलज़िमों का पीछा करने के लिए पुजारियों को अगली गाड़ी से रवाना कर दिया। परंतु क्योंकि उस विधवा को बचाने में जो समय लगा उसके कारण फिक्स और पुजारी, फिलिस फॉग और उसके नौकर से पहले कलकत्ता पहुंच गए। मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया था कि उन्हें गाड़ी से उतरते ही हिरासत में ले लिया जाए।

यह जानकर फिक्स को बहुत निराशा हुई थी कि फिलिस फॉग अब तक कलकत्ता यानी राजधानी नहीं पहुंचा था। स्वाभाविक रूप से उसने मान लिया कि जिस चोर का वो पीछा कर रहा था वो इंडियन पेनिंसुलर रेल्वे के किसी स्टेशन पर उतर गया होगा और उसने किसी उत्तरी प्रांत में शरण ले ली होगी। चौबीस घंटे तक फिक्स स्टेशन पर अत्यन्त व्यग्रता से उसकी तलाश करता रहा।

उस दिन सुबह जब फिक्स ने उन्हें स्टेशन पर उतरते देखा तो उसके उल्लास की सीमा न थी; परंतु उनके साथ उतरी महिला की मौजूदगी उसे बिल्कुल भी समझ में नहीं आई। उसने तुरंत एक पुलिसवाले को उन्हें हिरासत में लेने के लिए कहा। और इस तरह मिस्टर फॉग, पासपार्टआउट व बुंदेलखंड के राजा की विधवा को जज औबेदैय्या के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

अगर पासपार्टआउट का ध्यान इस केस में बुरी तरह उलझा न होता तो उसने कोर्ट के एक कोने में बैठकर ध्यान से देख रहे जासूस को पहचान लिया होता। फिक्स कोर्ट की कार्यवाही को बहुत ही ध्यान पूर्वक देख रहा था क्योंकि कलकत्ता में उसकी स्थिति वैसी ही थी जैसी बम्बई और सुएज़ में थी। उसके पास अभी भी वारंट नहीं था। जज औबेदैय्या ने पासपार्टआउट द्वारा जुर्म के इकबाल पर गौर किया। पासपार्टआउट अत्यंत हताश था और सोच रहा था कि काश उसने जल्दबाज़ी में वह सब न कहा होता।

"सब जानकारी आ गई है?" जज ने पूछा।

"सही है।" मिस्टर फॉग ने जवाब दिया।

जिस पर जज ने जारी रखा, "चूंकि अंग्रेज़ों का कानून समस्त धर्मों को मानने वाले हिन्दुस्तान के बाशिंदों को बराबर का हक देता है और उनकी सुरक्षा का वायदा करता है, और चूंकि पासपार्टआउट ने जुर्म का इकबाल कर लिया है कि 20 अक्टूबर को उसने बम्बई के मालाबार हिल स्थित मंदिर के फर्श को पैरों में जूते पहनकर अपवित्र कर दिया; मैं पासपार्टआउट को पंद्रह दिन की कैद और तीन सौ पाऊंड की सज़ा देता हूं।"

"तीन सौ पाऊंड!" पासपार्टआउट चिल्ला दिया जिसे सबसे ज़्यादा चिंता जुर्माने की थी।

"चुप।" दरबान ने कहा और जज ने जोड़ा, "जहां तक यह साबित नहीं हो जाता कि नौकर और मालिक के बीच में सांठ-गांठ नहीं थी – और वैसे भी मालिक अपने नौकर की हरकतों के लिए ज़िम्मेदार है; इसलिए मैं फिलिस फॉग को आठ दिन की कैद और एक सौ पचास पाऊंड जुर्माने की सज़ा देता हूं। अब अगला केस पेश किया जाए।"

पासपार्टआउट इस सज़ा से दंग रह गया क्योंकि इससे उसके मालिक की बर्बादी निश्चित थी। इसका अर्थ था कि वो बीस हज़ार पाऊंड की शर्त हार जाएगा और वह भी केवल इसलिए क्योंकि वो मूर्खतापूर्वक उस अभिशप्त मंदिर में घुस गया था।

फिलिस फॉग के माथे पर शिकन तक नहीं आई थी, मानो इस फैसले से उसका कोई ताल्लुक ही न हो। परंतु जैसे ही क्लर्क दूसरे केस की आवाज़ लगाने वाला था, उसने खड़े होकर कहा, "मैं ज़मानत देने के लिए तैयार हूं।"

"वो तुम्हारा अधिकार है।" जज ने जवाब दिया।

यह सब देख-सुनकर फिक्स एकदम
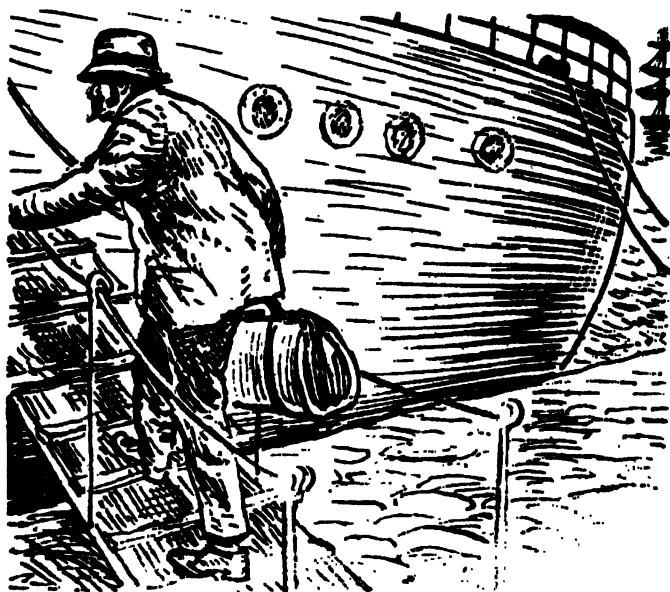
सिहर उठा परंतु तभी उसने जज को यह कहते सुना, "फिलिस फॉग और उसका नौकर अजनबी है इसलिए उन्हें एक-एक हज़ार पाऊंड की विशाल ज़मानत देनी होगी।" यह सुनकर फिक्स थोड़ा-सा शांत हुआ। अगर मिस्टर फॉग कैद पूरी नहीं करता तो उसे दो हज़ार पाऊंड भरने पड़ेंगे।"

"यह रही ज़मानत" फिलिस फॉग ने पासपार्टआउट से थैला लेकर उसमें से नोटों की गड्डियां निकालीं और उन्हें क्लर्क की मेज पर रख दिया।

"यह पैसा जेल से लौटने पर तुम्हें लौटा दिया जाएगा" जज ने कहा, "इस बीच तुम्हें ज़मानत पर रिहा किया जाता है।"

"चलो चलें।" फिलिस फॉग ने अपने नौकर से कहा।

"कम-से-कम उन्हें जूता तो लौटा देना चाहिए!" पासपार्टआउट गुस्से में चिल्लाया। जिस पर उसे जूता लौटा दिया गया।

"काफी महंगे पड़े हैं ये जूते", वो बुदबुदाया।
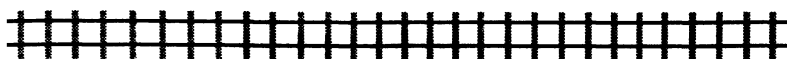
"एक-एक हज़ार पाऊंड का! और ऊपर से ये आरामदेह भी नहीं हैं!"

पासपार्टआउट इस वारदात से काफी परेशान होकर मिस्टर फॉग के पीछे चल दिया जिन्होंने औदा को सहारा दिया हुआ था।

फिक्स को अभी भी आशा थी कि यह चोर दो हज़ार पाऊंड की राशि इस तरह छोड़कर नहीं जा सकता, और वो आठ दिन की कैद भुगतने को तैयार हो जाएगा। इसलिए वो फॉग के पीछे चल दिया।

मिस्टर फॉग ने अपने व अपने दोनों साथियों के लिए बग्घी ली और चल दिए। फिक्स को उस बग्घी के पीछे-पीछे दौड़ाना पड़ा जो एक घाट पर जाकर रुक गई।

आधा मील दूर रंगून वाला जहाज़ खड़ा था। घड़ी में ग्यारह बज रहे थे, मिस्टर फॉग एक घंटा पहले पहुंच गए थे।

फिक्स ने देखा कि वो बग्घी में से उतरा और औदा व नौकर के साथ एक किश्ती में बैठ गया। जासूस फिक्स गुस्से में पैर पटक रहा था। "लुटेरा एक बार फिर भाग गया। दो हज़ार पाऊंड भी चले गए! एकदम चोर जैसे पैसा बर्बाद कर रहा है! अगर ज़रूरी हुआ तो मैं दुनिया के छोर तक इसका पीछा करूंगा, परंतु इस रफ्तार से वो खर्च करता रहा तो चुराए हुए पैसे में से कुछ भी नहीं बचेगा।"

जासूस की बात में दम तो था क्योंकि यात्रा खर्च, रिश्वत, हाथी खरीदना, ज़मानत और जुर्माने आदि पर फिलिस फॉग ने कुल मिलाकर लंदन छोड़ने से अब तक पांच हज़ार पाऊंड खर्च कर दिए थे। और इस वजह से जासूस फिक्स को अपना इनाम लगातार कम होता नज़र आ रहा था, क्योंकि वापस मिले पैसे के अनुपात में ही इनाम मिलने वाला था!

यहां फिलिस फॉग का भारतीय प्रायद्वीप का सफर खत्म हो गया।

ज्यूल्स वर्न (1828–1905) की मशहूर कहानी 'अराउंड द वर्ल्ड इन एटी डेज़' से।
अनुवादः **राजेश खिंदरी**। संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछली बार हमने आपसे एक सवाल पूछा था – जिसमें E की तरह दिख रही आकृति को 4 सीधे कट लगाकर 7 ऐसे टुकड़ों में बांटना था जिन्हें जोड़कर एक वर्ग बन जाए।

इस सवाल के हमें दो सही जवाब प्राप्त हुए हैं। खास बात यह है कि दोनों जवाब में 4 कट अलग-अलग तरीके से लगाकर 7 टुकड़े किए गए हैं। ये दोनों हल यहां दिए जा रहे हैं।

दिनेश कुमार बिनौले (सतवास, ज़िला देवास, म.प्र) **का जवाब**
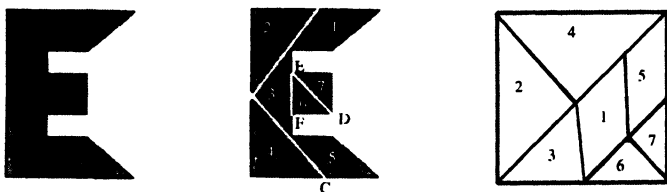
कुलवंत मदान (होशंगाबाद, म.प्र.) **का जवाब**
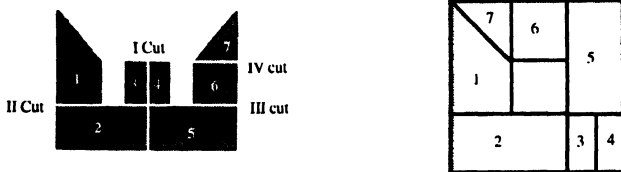
कुलवंत मदान ने इस सवाल को और थोड़ा आगे बढ़ाते हुए E आकृति को तीन कट लगाकर 4 टुकड़े किए और इन्हें जोड़कर एक वर्ग बनाया है, परन्तु उनके दोनों हल में वर्ग के अंदर एक और खाली वर्ग रह जाता है।

इस बार का सवाल – फ़र्ज कीजिए आपके पास आठ पेंसिल हैं। पेंसिल की जगह माचिस की तीलियों से भी काम चल जाएगा। अब इन आठ पेंसिल/तीलियों को इस तरह जमाना है कि दो वर्ग और चार त्रिकोण बन जाएं।

अपने जवाब जल्द से जल्द हमें इस पते पर भेजिए :

संदर्भ – द्वारा एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म.प्र. पिन 461001

कुछ ईंटें, कुछ प्रमेय और कुछ निष्कर्ष

रामकृष्ण भट्टाचार्य

इस समापन किश्त में कुछ विशेष ईंटों और प्रमेयों की चर्चा है। साथ ही प्राचीन भारत में ज्यामिति के विकास और शुल्व सूत्रों के निहितार्थों पर कुछ टिप्पणियां।

▪मनें कई मर्तबा उल्लेख किया है कि शुल्व सूत्र मूलतः विभिन्न आकार व आकृतियों की ईंटों से सम्बंधित हैं। इन ईंटों में से कई के अपने नाम हैं। कुछ ईंटें तो काफी व्यावहारिक डील-डौल की हैं किंतु कुछ बहुत विचित्र हैं। आइए इनकी एक सूची बनाई जाए।

ईंटों की नाप

शुल्व ग्रन्थों में सौ से अधिक प्रकार की ईंटों का उल्लेख है, अधिकांश (कम से कम 90) के तो विशिष्ट नाम हैं। हालांकि कई मामलों में अलग-अलग आकार-प्रकार की ईंटों को एक ही नाम दे दिया गया है। बौधायन शुल्व सूत्र में बृहति ईंट का ज़िक्र है जिसका उपयोग प्रउग चिति के निर्माण में किया जाता था। यह एक आयताकार ईंट है ($10\sqrt{5} \times 5\sqrt{5}$ वर्ग अंगुल)। यही नाम उभयतः प्रउग चिति में प्रयुक्त होने वाली उस ईंट के लिए भी है जिसकी दो भुजाएं 36.5 व 18.25 अंगुल लम्बी हों। और इसी ईंट को अध्यर्धा के नाम से भी पुकारा जाता है। अब अध्यर्धा का शाब्दिक अर्थ होता

है 'एक अतिरिक्त अर्ध युक्त' अर्थात डेढ़ ($1\frac{1}{2}$)। अर्थात अध्यर्धा (अथवा अध्यर्धा) नाम को एक वर्गाकार ईंट से तुलना करके समझना होगा (वर्तमान संदर्भ में 20×20 वर्ग अंगुल यानी षष्ठी ईंट)। दूसरी ओर कात्यायन शुल्व सूत्र में बृहति का अर्थ एक अन्य वर्गाकार ईंट (24×24 वर्ग अंगुल) है। इसे पंचमी (पुरुष का $\frac{1}{5}$) भी कहते हैं।

पाद (या पाद्या) नाम को भी एक अपेक्षाकृत बड़ी ईंट से तुलना के संदर्भ में ही समझना होगा। पाद ईंट उस बड़ी ईंट का चौथा हिस्सा है यानी अर्ध, अध्यर्धा या पाद जैसी ईंटों के मामले में पहले हमें उस मूल ईंट का आकार पता करना होगा जिसे आधा, ड्योढ़ा या चौथाई किया गया है।

कुछ ईंटों के आकार व आकृति तो दी गई हैं मगर उन्हें नाम नहीं दिए गए हैं। आपस्तम्ब में 9 अलग-अलग किस्म की ईंटों का ज़िक्र है किन्तु इन्हें नाम नहीं दिए गए हैं। इसी प्रकार से वृत्ताकार चितियों के निर्माण में 20 प्रकार की ईंटों का इस्तेमाल होता है। इन ईंटों के दो फलक वक्रता लिए होते हैं जबकि अन्य दो फलक सीधे होते हैं। इन ईंटों को कोई नाम नहीं दिया गया है। दिलचस्प बात यह है कि लगभग कोई भी नाम चारों रचनाओं में समान नहीं है। बृहति जैसा आम नाम भी चारों में नहीं मिलता। मानव शुल्व सूत्र में कुछ ईंटों के नाम दिए गए हैं जो बहुत ही हैरतअंगेज़ लगते हैं किन्तु इनकी लम्बाई-चौड़ाई नहीं दी गई है। यह तय करना मुश्किल है कि क्या अपस्या, ऋतव्या, चण्ड:, नकुल, प्राणभृत, वैश्वदेवी, विराज और वायव्या आदि नाम की ईंटें प्रचलन में थीं या किसी पुरोहित ने वैसे ही प्रभाव जमाने के लिए ये नाम दे दिए थे।

यदि ऐसी नाम-मात्र की ईंटों को छोड़ दें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं: कम-से-कम 26 ईंट त्रिभुजाकार हैं,19 वर्गाकार हैं, 14 आयताकार हैं, 5 समलम्ब हैं, 2 समान्तर चतुर्भुजाकार हैं तथा एक-एक पंचभुज व समचतुर्भुज (Rhombus) आकार की हैं। वक्रपक्ष व्यस्तपुच्छ श्येन चिति में प्रयुक्त ईंटों को आपस्तम्ब में मात्र संख्याओं से प्रदर्शित किया गया है – प्रथमा, द्वितीया, तृतीया . . . . नवम। प्रथम ईंट 24 × 20 वर्ग अंगुल की है। इस चिति के लिए बहुत कम प्रकार की ईंटों की ज़रूरत पड़ती है तथा इनके नाम स्वयं में स्पष्ट हैं: पक्षमध्यिया, पक्षअग्रीया और पक्षस्तका।

कुछ ईंटों के नाम अलग-अलग हैं किन्तु उनके आकार और आकृति एक ही हैं। जैसे अनूक, चतुर्थी, चत्रुर्भागिया,

तुरीय और षोडशी – ये पांचों वर्गाकार (30×30 वर्ग अंगुल) ईंटें हैं। कुछ नाम तो स्वतः स्पष्ट हैं: चतुर्थी, पंचमी या षष्ठी से तात्पर्य वर्ग की भुजा की लम्बाई (1 पुरुष या 120 अंगुल का चौथाई, पांचवां भाग या छठा भाग) से होता है । किन्तु अष्टमी नाम पेंचदार है। इसका अर्थ होता है वर्गाकार पंचमी ईंट के क्षेत्रफल (24×24 वर्ग अंगुल) का आठवां भाग और किसी आयताकार ईंट के क्षेत्रफल (24×36 वर्ग अंगुल) का आठवां भाग। इन दोनों का उपयोग पक्षीनुमा श्येन चिति (द्वितीय प्रकार) बनाने में होता है। ये दोनों ही आकृति में समकोण त्रिभुजाकार होती हैं। प्रथम का कर्ण 16 अंगुल, 32 तिल और दूसरी का कर्ण 21 अंगुल, 21 तिल होता है। अब एक उभयी ईंट बनाई जाती है। यह एक विषमबाहु त्रिभुज की आकृति की होती है जिसका आधार 30 अंगुल और दो भुजाएं उपरोक्त दो कर्णों के बराबर होती हैं।

षोडशी शब्द भी समस्यामूलक है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है सोलहवां भाग। चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी के विपरीत यहां तात्पर्य भुजा की लम्बाई से न होकर ईंट के क्षेत्रफल से है, अर्थात षोडशी ईंट का क्षेत्रफल 900 वर्ग अंगुल (120×120 वर्ग अंगुल/16) होता है। यानी यह और कुछ नहीं चतुर्थी वर्गाकार ईंट (30×30 वर्ग अंगुल) है। आपस्तम्ब में षोडशी से तात्पर्य इसी क्षेत्रफल की समलम्बक ईंट (Trapezium) से है।

कर्ण का वर्ग . . .

ईंटों की बात को यहीं रोकते हैं। अब हम अपनी चर्चा के समापन पर आ चुके हैं। अलबत्ता समापन से पहले हम दो और प्रमेयों पर ध्यान देंगे जो निर्णायक महत्व के हैं। ये प्रमेय निम्नानुसार हैं:

(क) "एक वर्ग पर (अर्थात उसके कर्ण पर) तनी हुई डोरी दुगने आकार का क्षेत्र उत्पन्न करती है।"

(ख) "एक आयत का कर्ण स्वतः वे दोनों क्षेत्र उत्पन्न करता है जो आयत की भुजा अलग-अलग बनाती है।" (अर्थात कर्ण का वर्ग दोनों भुजाओं के वर्गों के योग के बराबर होता है।)

शुल्व सूत्रों में मात्र चतुरस्र को मान्यता दी गई है। इनमें मात्र एक ही प्रकार के त्रिभुज - प्रउग यानी समद्विबाहु त्रिभुज - को ही नाम से प्रस्तुत किया गया है। शब्द तिस्र एक विशेष किस्म की ईंट के संदर्भ में आता है – यह ईंट है समकोण त्रिभुजाकार। मानव शुल्व सूत्र में त्रिकोण की भुजा वक्राकार है। किन्तु त्रिभुज को इंगित करते हुए कोई सामान्य शब्द नहीं है। समकोण त्रिभुज को एक अर्ध-चतुर्भुज

के रूप में ही देखा गया है – यह एक वर्ग (समचतुरस्र) हो सकता है या एक आयत (दीर्घ चतुरस्र) हो सकता है जिसे कर्ण पर से दो भागों में बांट दिया गया है। तो शुल्व सूत्रों में पायथागोरस प्रमेय का उल्लेख दो बार हुआ है : पहली बार एक वर्ग के लिहाज़ से (प्रमेय 'क') और दूसरी बार एक आयत के लिहाज़ से (प्रमेय 'ख')।

इन प्रमेयों के उपयोग के कुछ उदाहरण एक अन्य सूत्र में दिए गए हैं: एक ऐसे आयत के संदर्भ में जिसकी भुजाएं 3 व 4, 15 व 8, 7 व 24, 12 व 35, 15 व 36 हों। यह आप आसानी से देख सकते हैं कि आधार व लम्ब पर बने वर्गों के क्षेत्रफल का जोड़ कर्ण पर बने वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर है:

$3^2 + 4^2 = 5^2$

$15^2 + 8^2 = 17^2$ आदि।

यही प्रमेय आपस्तम्ब और कात्यायन में भी प्रस्तुत हुआ है। बहरहाल यह सिद्ध करने का प्रयास करना निरर्थक है कि तथाकथित पायथागोरस प्रमेय (यूक्लिड के एलिमेन्ट्स की प्रमेय 1.47) ठीक उसी रूप में पायथागोरस (530 ईसा पूर्व) से पहले ही भारत में ज्ञात थी, जैसा कि कुछ भारतीय शोधकर्त्ताओं व शिक्षित लोगों ने दावा किया है। इस निरर्थकता का एक कारण तो यह है कि शुल्व सूत्रों का काल निर्धारण काफी अटकलों पर टिका है और इनका काल 600 ईसा पूर्व से पहले तो नहीं ही हो सकता।

दूसरा कारण यह है कि वैसे भी ये दावे-प्रतिदावे अर्थहीन हो गए हैं क्योंकि यह पता चल गया है कि यह प्रमेय पायथागोरस से भी 1200 वर्ष पूर्व बेबीलोन-वासियों को ज्ञात था।

यदि हम मान भी लें कि शतपथ ब्राह्मण में इस प्रमेय की जानकारी है (जैसा कि साइडनबर्ग दावा करते हैं) तो भी शतपथ ब्राह्मण का काल 1900-1600 ईसा पूर्व तक पीछे तो जा ही नहीं सकता। हम इतना ही कह सकते हैं कि भारत में प्राचीन बेबीलोन व यूनान से स्वतंत्र इस प्रमेय का प्रतिपादन कारीगरों व पुरोहितों के कामकाज से हुआ था।

वृत का वर्ग बनाना

जिस दूसरे प्रमेय का उल्लेख हम करना चाहेंगे, वह निम्नानुसार है:

किसी वृत्त को वर्ग में बदलने के लिए व्यास को आठ बराबर भागों में बांटकर, इनमें से एक भाग को 29 भागों में बांटें; अब इनमें 28 भाग और साथ में बचे हुए एक भाग का छठवां भाग, उसमें से आठवां भाग कम करके, हटा दें।

अर्थात वृत्त के व्यास का

$$1 - \frac{1}{8} + \frac{1}{8 \times 29} \quad \frac{1}{8 \times 29 \times 6} \quad {}^{'}\frac{1}{8 \times 29 \times 6 \times 8}$$

भाग उस वर्ग की एक भुजा के बराबर होगा जिसका क्षेत्रफल वृत्त के बराबर है।

इसी कार्य के लिए एक और विधि बताई गई है :

व्यास को 15 भागों में बांटकर 2 भाग हटा दें, ... इस माप में इसके तिहाई भाग की वृद्धि कर दें और इस तिहाई में इसके चौथाई भाग में से चौतीसवां भाग (चौथाई का) कम करके वृद्धि कर दें। अर्थात

$$1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \times 4} \quad \frac{1}{3 \times 4 \times 34}$$

$$\frac{577}{408}$$

=1.414215686

ऊपर वर्णित पायथागोरस प्रमेय के साथ जोड़कर देखें तो इससे हमें $\sqrt{2}$ का मान मिलता है (यदि हम वर्ग की भुजा एक इकाई ले लें)।

वास्तव में आज उपलब्ध $\sqrt{2}$ के मान (1.414213562.......) के काफी नज़दीक है यह मान।

इससे शायद यह भी स्पष्ट होता है कि क्यों मापन की इकाई अंगुल के 34वें भाग तिल से शुरू होती है। दिक्कत सिर्फ यह है कि हम यह नहीं जानते कि प्राचीन काल में उन लोगों ने $\sqrt{2}$ का मान गणितीय तौर पर कैसे निकाला था। सारे प्राचीन भारतीय गणितज्ञों की एक विशेषता यह थी कि वे गणना के चरणों का उल्लेख नहीं करते थे, मात्र परिणाम बताया करते थे।

निष्कर्ष

शुल्व सूत्रों का अध्ययन प्राचीन भारत में ज्यामिति के प्रथम ग्रन्थों के नाते किया गया है। शुल्व सूत्रों की ओर दुनिया का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय जॉर्ज थिबॉल्ट (1848-1914) को जाता है जिन्होंने बौधायन शुल्व सूत्र का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया (1874 से शुरू करके)। इसके अलावा उन्होंने जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (1875) में इस विषय पर एक लेख भी लिखा। शेष शुल्व सूत्रों का अनुवाद इसके बाद बीसवीं सदी में हुआ । इन पर इण्डोलॉजिस्ट व विज्ञान के इतिहास-कारों दोनों ने ही विचार-विमर्श किया है। हम शुल्व सूत्रों के कुछ ऐसे पहलुओं की चर्चा करना चाहेंगे जिन पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया है।

1. प्राचीन काल में जो ब्राह्मण पुरोहित बनना चाहते थे, उनसे अपेक्षा होती थी कि वे वैदिक मंत्रों से संबंधित समस्त विषय सीखें। इन संबंधित विषयों का सामान्य नाम वेदांग (अर्थात वेद के अंग) है।

स्वयं शुल्व सूत्र मिस्त्रियों व रथकारों के ज्ञान व अनुभवों का संचित रूप है किन्तु शुल्व ग्रन्थों ने ज्यामिति व मापन संबंधी अध्ययनों का सूत्रपात नहीं किया। एक बार रचे जाने के बाद ये सूत्र गतिहीन हो गए, इनमें आगे कोई विकास नहीं हुआ। इसके लिए पुरोहितों (अध्वर्यु) में रुचि के अभाव को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। ये अध्वर्यु ही शुल्व सूत्रों के रखवाले (रिकॉर्ड कीपर) थे।

और इसके कारण खोजना मुश्किल नहीं है। प्राचीन काल में पुरोहित बनने के इच्छुक ब्राह्मणों को सारे वेदांग सीखने होते थे। वेदांग 6 किस्म के थे:

1. शिक्षा – वैदिक मंत्रों को सही ढंग से उच्चारित करने का विज्ञान
2. छन्द
3. व्याकरण
4. निरुक्तः कठिन वैदिक शब्दों के अर्थ
5. ज्योतिषः खगोल अथवा वैदिक पंचांग
6. कल्पः अनुष्ठान

कल्प में कई सूत्रों का समावेश है जो अनुष्ठानों में करणीय व अकरणीय कार्यों की व्यवस्था देते हैं। घरेलू कर्मकाण्ड से संबंधित सूत्र गृह्य सूत्र कहलाते हैं और व्यापक बलि से संबंधित सूत्रों (दर्शपूर्णमास, सोमयोग आदि) को श्रौतसूत्र कहा जाता है। शुल्व सूत्र इन अलग-अलग श्रौतसूत्रों के अंग हैं।

समय बीतने के साथ वेदांग का अध्ययन अनिवार्य न रह गया। पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा गया है कि जब कोई छात्र यज्ञ करने की कला सीख जाए तो व्याकरण, खगोल आदि का अध्ययन किए बगैर भी वह समावर्तन (समापन स्नान) कर सकता है।

इन विषयों का संवर्धन शिक्षण के धर्मनिरपेक्ष केन्द्रों पर छोड़ दिया गया था (वैसे यह गौरतलब है कि वेदांगों में कल्प को छोड़कर ऐसा कुछ नहीं है जिसे 'धर्म' या 'पूजनीय' कहा जा सके)। तो छन्द, व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त व शिक्षा का अध्ययन पुरोहितों के दायरे से बाहर चलता रहा, फलता-फूलता रहा जबकि ज्यामिति व मापन का अध्ययन थम गया। इसलिए इन दो क्षेत्रों में आगे कोई विकास नहीं हुआ।

2. शुल्व सूत्रों के अध्ययन का महत्व यह नहीं है कि इनसे हमें वैदिक कर्मकाण्ड की जानकारी मिलेगी, बल्कि यह है कि इनसे हमें पता चलता है कि इन कर्मकाण्डों में विज्ञान की कितनी संभावना छिपी थी। जार्ज थिबॉट के युगान्तरकारी शोध के बाद कई शोध-कर्त्ताओं ने शुल्व ग्रन्थों की ज्यामितीय विषय-वस्तु पर ध्यान दिया है। अलबत्ता इनके उचित अध्ययन व विधिवत विश्लेषण से प्राचीन टेक्नॉलॉजी तथा प्रायोगिक व सैद्धांतिक ज्ञान के परस्पर निर्भर विकास के बारे में और पता चलेगा। यह यात्रा सिद्धांत से व्यवहार

की ओर नहीं बल्कि व्यवहार से सिद्धांत की ओर रही है। टेक्नॉलॉजी, विशेषत: ईंट बनाने व बिछाने की टेक्नॉलॉजी ही शुल्व का स्रोत है। इस मायने में शुल्वसूत्र शिल्पशास्त्र के पूर्ववर्त्ती हैं।

3. शुल्व ग्रन्थों में मुख्य शब्द रज्जू (रस्सी) है। रस्सी के एक टुकड़े का उपयोग पैमाने व दिशा निर्धारक दोनों रूपों में करना शुल्व ज्यामिति की विशेषता है। इसमें यदा-कदा बांस की एक छड़ी — वेणु का उपयोग भी होता था। रस्सी से वास्तविक मापन व क्रियाएं इस कार्य का अनिवार्य अंग थीं। अर्थात यह यूक्लिडीय ज्यामिति में पाई जाने वाली स्थान व आकृति की अमूर्त धारणा से सर्वथा भिन्न है। इसमें दिमाग को हाथ का सहारा चाहिए और दिमाग हाथ को सहारा भी देता है।

4. कुछ अध्येताओं ने शुल्व को एक वैज्ञानिक विषय मानने में हिचक दिखाई है या इंकार भी कर दिया है। उनका मत रहा है कि शुल्व पूरी तरह प्रयोग-आधारित (एम्पिरिकल-आनुभविक) है और इसलिए इसे वैज्ञानिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। थिबॉट स्वयं इतने शुद्धतावादी (प्लैटोनिक) नहीं थे मगर फिर भी वे इन्हें वैज्ञानिक ग्रंथ बताते हुए थोड़े तो झिझकते हैं। थिबॉट का कहना था कि वे लोग निर्लिप्त भाव से ज्ञान की खोज में नहीं लगे थे किन्तु उनकी ज्यामिति ठीक-ठाक ही है।

इससे संगमरमरी महलों में रहने वाले पंडितों की संवेदनहीनता प्रकट होती है। वे कुलीन वर्ग के साथ जुड़ना पसंद करते हैं और कामगार लोगों को हिकारत के भाव से देखते हैं, गोया वे लोग किसी वैज्ञानिक चीज़ को बनाने में निहित रूप से अक्षम हों। इस रवैये से पंडितों का वर्ग संबंध स्पष्ट हो जाता है। ज़्यादा न भी कहें, तो इसे निंदनीय तो कहना ही होगा।

5. और बात यहीं खत्म नहीं होती। यह पूरा विचार ही बेतुका और अनैतिहासिक है। आज जे. डी. बर्नाल, वी. गॉर्डन चाइल्ड, बी. फैरिंग्टन व अन्य के शोध से यह बात स्थापित हो गई है कि विज्ञान के इतिहास में यह आम बात है कि शुरुआती महान खोजें व आविष्कार तथा उनसे उपजने वाला ज्ञान दिमाग और हाथों के तालमेल का परिणाम था। यह तालमेल (एकता) होमो-इरेक्टस व होमो-सेपिएन्स से होमो-फेबर (सर्जक मानव) के विकास में यह महत्वपूर्ण छलांग थी। वानर के नर बनने में श्रम की भूमिका को फ्रेडरिक एंगेल्स ने बहुत पहले स्पष्ट किया था। हमारे वेद अध्येता इस सबसे बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हैं।

6. बहरहाल, जिन पुरोहितों ने कर्मकाण्ड की रचनाओं में ईंट बनाने व बिछाने की कला को शामिल किया उनके योगदान को नकारना उजड्डता कही जाएगी। वे चाहते तो इस कला

को मर जाने देते और छन्दश्चिति और मनोमय चिति से संतुष्ट रहते। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सूत्रों की कूट शैली व संक्षिप्तता की वजह से टीकाओं की आवश्यकता पड़ती थी और टीकाकार प्रायः खुद नहीं समझ पाते थे कि सूत्र में कहा क्या गया है। यह विज्ञान के मार्ग में सहायक न होकर रोड़ा बन जाता है।

7. शुल्व में कोई निरन्तरता नहीं रही क्योंकि वैदिक यज्ञ बहुत महंगे होने के कारण धीरे-धीरे चलन में न रहे और उनका स्थान पूजा व भक्ति ने ले लिया। भारत में ज्यामिति का पुनर्जन्म खगोलविदों के हाथों हुआ।

अर्थात जिस तरह से एक समय पर इसका विकास कर्मकाण्ड के सहचर के रूप में हुआ था उसी प्रकार से, आगे चलकर इसका विकास खगोल-शास्त्र के सहचर के रूप में हुआ। इसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में कभी प्रोत्साहित नहीं किया गया। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर के साथ ज्यामिति धरती से उठकर आकाश में पहुंच गई और इसका शुल्व से लगभग कोई नाता न रहा।

आर्यभट् (जन्म 476 ईस्वी) और शुल्व सूत्र (600 ईसा पूर्व से बाद नहीं) के बीच एक लम्बा अन्तराल है। और स्मरणीय है कि आर्यभट वेदांग-पश्चात खगोल शास्त्रियों में प्रथम नहीं थे। आर्यभट के पूर्ववर्त्ती ज़रूर रहे होंगे मगर उनकी रचनाएं गुम हो गई हैं। हम नहीं जानते कि आर्यभट ने शुल्वसूत्रों का अध्ययन किया था या नहीं। ऐसा बताया जाता है कि ब्रह्मगुप्त (जन्म 598 ईस्वी) ने 4 वर्ष वेदों का अध्ययन किया था। सम्भव है उन्होंने वेदांगों का भी अध्ययन किया हो किन्तु उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्दावली पर शुल्व सूत्रों का कोई असर नहीं दिखता । यही बात भास्कर द्वितीय (12 वीं सदी) के बारे में भी कही जा सकती है। भास्कर द्वितीय हमारे अन्तिम महान खगोलशास्त्री थे।

इसलिए सरस्वती अम्मा के इस निष्कर्ष से सहमत होना मुश्किल है कि शुल्व और बाद की ज्यामिति के बीच निरन्तरता है। वे स्वयं अपनी पुस्तक में स्वीकार करती हैं कि आर्यभट द्वितीय तथा भास्कर द्वितीय जिन घरानों के थे उनमें ज्यामितिय ज्ञान के साथ निरन्तरता का अभाव था। यह बात समस्त वेदांग-पश्चात खगोलशास्त्रियों व ज्यामिति विदों के बारे में सही है।

8. शुल्व ग्रन्थ ज्यामिति व मापन की एक व्यवस्थित कार्य पुस्तक प्रदान नहीं करते। समस्त प्रमेय पूर्व-निर्धारित कर्मकाण्डों की ज़रूरतों की पूर्त्ति के लिहाज़ से रचे गए हैं। ऐसा लगता है कि इन प्रमेयों को आगे बढ़ाने या उनका अगला तार्किक चरण खोजने

की कोई जिज्ञासा मौजूद नहीं थी। यदि विज्ञान को पुरोहितों के भरोसे छोड़ा जाएगा, तो यही होना है। अपने व्यवसाय के लिए अनावश्यक विषय को आगे बढ़ाने की अपेक्षा उनसे नहीं की जा सकती। लिहाज़ा समस्त शुल्व सूत्र वैज्ञानिक रचनाओं के हिसाब से कुछ हद तक अव्यवस्थित व बेडौल से हैं।

9. अलबत्ता जो भी कहें मगर शुल्व सूत्र पठनीय ग्रन्थ हैं। इन्हें कर्मकाण्डों से स्वतंत्र पढ़ा जा सकता है। ये जानकारी के खज़ाने हैं तथा इनका विस्तृत व बारीक विश्लेषण किया जाना चाहिए।

रामकृष्ण भट्टाचार्य: आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

आभार: उन सभी पूर्ववर्ती विद्वानों का आभार जिन्होंने शुल्व सूत्रों का अनुवाद एवं संपादन किया है क्योंकि उन मार्गदर्शकों के बगैर इस लेख को लिख पाना संभव नहीं था।

इस लेखमाला को तैयार करने में रामकृष्ण भट्टाचार्य की मदद करने वालों में हैं – सर्वश्री प्रसुन कुमार बेरा, रिंकु चौधुरी, शुभ्रा दत्ता, सिद्धार्थ दत्ता, सायक देव, प्रद्योत कुमार बाइटि, अमिताभ भट्टाचार्य और रुद्रजीत भट्टाचार्य के नाम प्रमुख हैं। रामकृष्ण जी इन सभी के प्रति हृदय से आभारी हैं।

सीखना-सिखाना

- बाल वैज्ञानिक – कक्षा 6, 7, 8
- सामाजिक अध्ययन – कक्षा 6, 7, 8
- खुशी–खुशी – कक्षा 1 से 5
- बच्चे असफल कैसे होते हैं
- सीखना–सिखाना
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण : रपट
- विज्ञान क्या है
- इतिहास क्या है
- प्रश्न बैंक

जन विज्ञान

- टिकाऊ खुशहाली
- बोल अरी ओ धरती बोल
- जवाब दर सवाल
- जनविज्ञान का सवाल
- बेटी करे सवाल
- बोलो तुम क्या चुप बैठोगे

एकलव्य की नियमित पत्रिकाएँ

चकमक
मासिक बाल विज्ञान पत्रिका
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 100.00

स्त्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 150.00

संदर्भ
द्वैमासिक पत्रिका
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 50.00
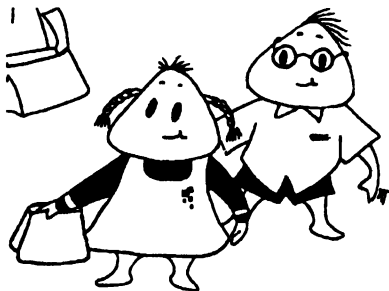
विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क:

एकलव्य, ई-1/25 अरेरा कॉलोनी,
भोपाल – 462016 म.प्र.
फोन-563380, फैक्स-561703

कहानी चौरी-चौरा की

असहयोग आंदोलन पर टिप्पणी करता अमृत बाज़ार पत्रिका में प्रकाशित एक कार्टून

गौतम पाण्डेय

चौरी-चौरा का नाम तो हम सबने सुना है। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर ज़िले में स्थित चौरी-चौरा का वर्णन प्रायः माध्यमिक कक्षाओं के इतिहास के पाठों में, महत्वपूर्ण भारतीयों के संस्मरणों में तथा अन्य राष्ट्रवादी लेखों में महात्मा गांधी या स्वतंत्रता आंदोलन के एक बड़े संदर्भ में ज़रूर रहता है। यह जानकारी कि वहां 4 फरवरी 1922 को एक उग्र भीड़ ने एक थाने में आग लगा दी जिससे 23 पुलिस वालों की जानें गईं थीं, सभी को मालूम है। मगर इस जानकारी का वर्णन इस घटना से गांधीजी को हुए संताप या वेदना, उनके द्वारा इस 'अपराध' की घोर भर्त्सना तथा इसी कारण उनके वर्ष भर पुराने असहयोग आंदोलन के

स्थगन के संदर्भ में ही किया जाता है।

चौरी-चौरा की घटना गांधीवादी राजनीति का, उस समय के समाज के निचले स्तर यानी किसानों, मज़दूरों आदि तक पहुंच, उनकी समझ व क्रियान्वयन का एक ऐसा नमूना पेश करती है जो गांधीवादी आंदोलन की स्वीकृत धारणाओं पर प्रश्न चिह्न ही लगाती है। स्पष्ट रूप से यहां हमारा उद्देश्य अन्य राष्ट्रवादी वर्णनों की तरह चौरी-चौरा के संदर्भ में गांधीजी के सिद्धांतों की व्याख्या करना नहीं है बल्कि 4 फरवरी 1922 को चौरी-चौरा में वास्तव में जो कुछ भी हुआ उसकी तैयारी व उसके परिणामों का विवेचन करना भर है।

हालांकि गांधीजी ने स्वयं को इस घटना से बिल्कुल ही अलग कर लिया था फिर भी गांधीजी के नाम पर संगठित हुई ग्रामीणों की एक भीड़ के अतिरिक्त उत्साह के कारण यह घटना घटी, इसलिए इस कहानी की शुरुआत उन्हीं से होती है।

असहयोग आंदोलन का बिगुल

1920 के आखिर में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन के रूप में एक क्रांतिकारी कार्यक्रम की शुरुआत की जिसका अर्थ था उन सभी वस्तुओं, संस्थाओं या व्यवस्थाओं का बहिष्कार जिसके द्वारा अंग्रेज़ हम पर शासन कर रहे थे। उन्होंने देश भर घूम-घूम कर विदेशी वस्तुओं (विशेषकर विदेशी वस्त्र), अंग्रेज़ी कानून, शिक्षा और प्रतिनिधि सभाओं के बहिष्कार का प्रचार किया। भारतीय मुसलमानों द्वारा चलाए जा रहे खिलाफत आंदोलन के साथ सम्मिलित रूप से चलाया जा रहा यह आंदोलन काफी सफल साबित हुआ था।

'राज से स्वराज' की तरफ बढ़ने की प्रक्रिया के इस दौर में कांग्रेस के पास 'स्वदेशी' और 'अहिंसा' नाम के दो बहुत ही महत्वपूर्ण अस्त्र थे। और इस पूरे आंदोलन के क्रियान्वयन व उसे सफल बनाने की ज़िम्मेदारी थी सत्याग्रही स्वयंसेवकों की। 1919 के रौलेट एक्ट को लेकर किए सत्याग्रह के दौरान सर्वप्रथम कांग्रेस ने सत्याग्रही स्वयंसेवकों को शामिल करना शुरू किया था। जिनका काम था सत्याग्रह को सुचारू रूप से चलाना और कांग्रेस के कार्यक्रमों में शामिल जनसमूहों को नियंत्रित करना तथा अनुशासन बनाए रखना। इस कार्य के लिए उन्हें प्रशिक्षण भी मिलता था। स्वयंसेवक बनने के लिए किसी व्यक्ति को एक 'प्रतिज्ञा पत्र' भरना होता था जिसमें वह भगवान के नाम की सौगंध लेता था कि वह केवल खद्दर पहनेगा, अहिंसा का पालन करेगा, अपने नेताओं की आज्ञा का पालन करेगा, हिन्दू धर्म में व्याप्त जाति व्यवस्था का विरोध करेगा, सांप्रदायिक सौहार्द्र बनाने की कोशिश

करेगा, सभी किस्म की कठिनाइयों (जेल आदि) को झेलने को तैयार रहेगा और गिरफ्तार होने पर अपने आश्रितों के लिए आर्थिक सहायता नहीं मांगेगा। ऐसी शर्तों के बावजूद उस समय राष्ट्रीयता की भावना इस कदर फैली थी कि दिसंबर 1921 तक हज़ारों की संख्या में लोगों ने अपने आपको स्वयंसेवक दलों में शामिल कर लिया था।

दो गांव – चौरी और चौरा

आइए अब वापस चौरी-चौरा की तरफ चलते हैं। चौरी और चौरा दो अलग-अलग गांवों के नाम थे जिसे एक करने का काम किया था रेल्वे के एक ट्रैफिक मैनेजर ने, जिसने जनवरी 1885 में वहां एक रेल्वे स्टेशन की स्थापना की थी। इस तरह शुरू में रेल्वे प्लेटफार्म और मालगोदाम के अलावा चौरी-चौरा नाम की कोई जगह नहीं थी। 1885 के बाद भी जो आस-पास बाज़ार बसा वो चौरा गांव में बसा। चौरा में ही वो मशहूर थाना भी था जिसे 4 फरवरी 1922 को जलाया गया था। इस थाने की स्थापना 1857 की क्रांति के बाद की गई थी और यह तृतीय दर्ज़े का थाना मुकर्रर था।

यहां के बाशिंदों में 11 प्रतिशत कलवार (कलार) जाति के थे जिनका पेशा शराब बनाना और दूसरे छोटे-मोटे व्यापार था। ये चौरा के अलावा पास के मुण्डेरा बाज़ार में भी सबसे प्रभावशाली लोग थे। यहां के करीब दो-तिहाई लोग खेती पर निर्भर थे जबकि एक-तिहाई व्यापार आदि पर। चौरा और आस-पास के बाज़ारों जैसे मुण्डेरा और भोपा बाज़ार से निर्यात की मुख्य वस्तुएं थीं – मृत जानवरों के चमड़े और हड्डियां, दाल, गेहूं, अलसी, चीनी व गुड़। जबकि मिट्टी का तेल, माचिस, कपड़े आदि आयात की मुख्य वस्तुएं थीं। 1922 के शुरू में चौरा बाज़ार में तीन तेल की मिलें थीं, एक-दो चीनी बनाने के कारखाने, चीनी और गुड़ के दो बड़े आढ़त, कपड़े की दो छोटी दुकानें और कलवारों की कुछ किराने की दुकानें भी थीं। रेल्वे स्टेशन के पास 'बर्मा शेल कंपनी' का एक मिट्टी के तेल का डिपो भी था। यहीं से 4 फरवरी 1922 को दंगाइयों ने मिट्टी का तेल लेकर थाने में आग लगाई थी। प्रत्येक मंगलवार और शुक्रवार को यहां बाज़ार लगता था जिसमें आसपास के गांवों के किसान और व्यापारी अपनी दुकानें लगाते थे और खरीददारी करते थे।

शनिवार को पास के भोपा बाज़ार में बाज़ार लगता था जहां चमड़े व हड्डियों का व्यापार होता था। इस दिन यहां करीब तीन से चार सौ तक लोग बाज़ार में रहते थे। ये व्यापार ज़्यादातर मुसलमान व्यापारियों के हाथ में था जो कानपुर और कलकत्ता के बड़े बाज़ारों को चमड़े और हड्डियां

ऊपर उत्तर प्रदेश का नक्शा है। इसमें चौकोन में दिखाया गोरखपुर और देवरिया वाला हिस्सा बड़ा करके दिखाया गया है ताकि चौरी-चौरा की स्थिति का पता चल सके। नक्शे सिर्फ समझ के लिए हैं इसलिए किसी स्केल पर आधारित नहीं हैं।
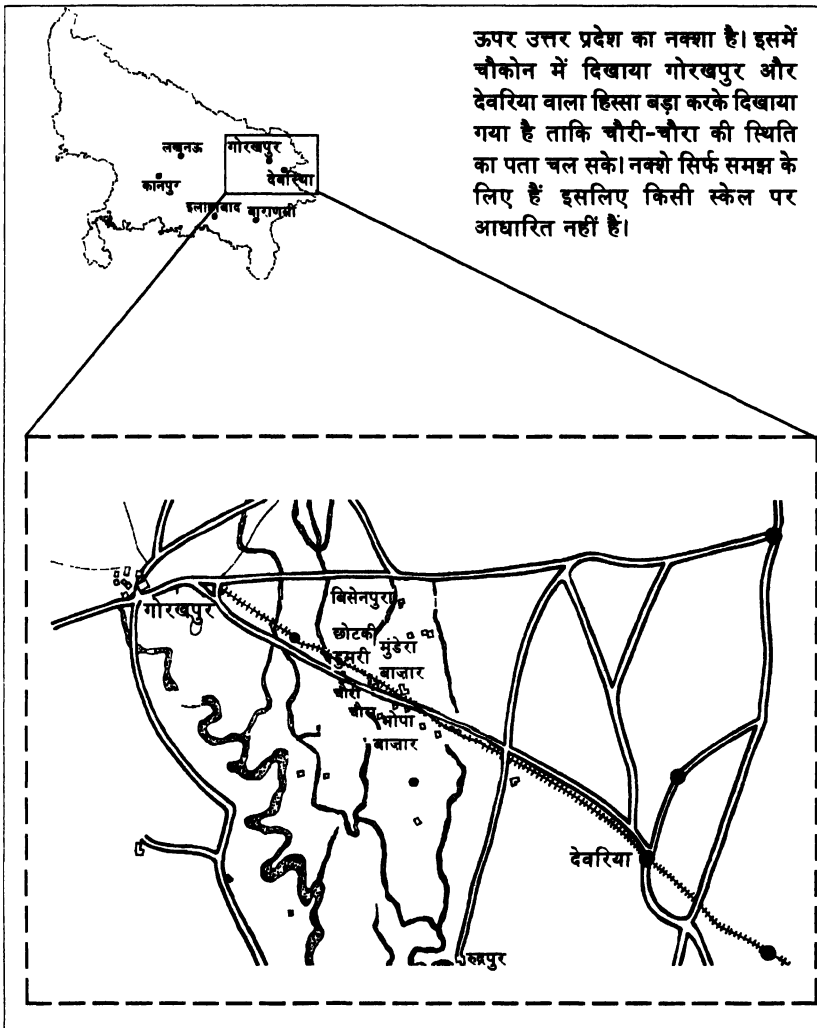
सप्लाई करते थे।

मगर इन सबसे जो बड़ा और स्थापित बाज़ार था वो था मुण्डेरा का। मुण्डेरा बाज़ार रेल्वे लाईन के दूसरी तरफ स्थित था और यहां मुख्य रूप से दाल, गुड़ और चावल के बड़े आढ़त थे। यहां की दुकानें चाहे वो किराने की हों, या कपड़े की, या शराब,

गांजा, भांग की या मांस की, दूसरी जगहों की दुकानों से बड़ी थीं। इसे ही यहां के लोग 'असली बाज़ार' कहते थे। यहां प्रत्येक शनिवार को बाज़ार लगता था और ऐसे ही एक बाज़ार वाले दिन चौरी-चौरा की घटना हुई थी।

इन बाज़ारों में चौरा बाज़ार बड़की डुमरी के ज़मींदार सरदार उमराव सिंह के क्षेत्र में आता था और मुण्डेरा बाज़ार बिशेनपुरा के ज़मींदार संत बक्स सिंह के क्षेत्र में। ये ज़मींदार अपने क्षेत्र के बाज़ारों में दुकान लगाने वालों पर कर लगाया करते थे तथा बाज़ार में किसी भी किस्म की अशांति या अव्यवस्था पैदा करने वालों से बड़ी सख्ती से निपटते थे। इस कार्य में उनका साथ देते थे चौरा थाना के सिपाही व दारोगा जो इन प्रभावशाली लोगों के काम आना अपना फर्ज़ समझते थे।

सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन

अब सामाजिक और राजनैतिक परिक्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों को देखते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के सारे ज़िले और विशेष रूप से गोरखपुर ज़िला बहुत ही पिछड़ा इलाका था। लेकिन 20वीं सदी की शुरुआत से कुछ सामाजिक और धार्मिक संगठनों ने इस इलाके में काम करना शुरू कर दिया था। इन संगठनों में कुछ प्रमुख थे – गौरक्षिणी सभा, सेवा समिति, ग्राम हितकारिणी सभा और ग्राम सुधारक सभा। हालांकि इनका कार्यक्षेत्र विशेष रूप से धर्म और समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना था मगर इन्होंने अपने कार्यों के संदर्भ में लोगों को देश में हो रही अन्य गतिविधियों से भी अवगत कराया। इस तरह 1920 तक आते-आते लोगों में थोड़ी बहुत राजनैतिक चेतना भी आने लगी थी। बहुत सारी जाति सभाएं जो अभी तक केवल जाति सुधार तक सीमित थीं अब राजनैतिक मामले भी उठाने लगी थीं। उदाहरण के लिए दिसंबर 1920 में गोरखपुर की एक तहसील में 'भूमिहार रामलीला मंडल' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य था ग्रामीण समाज में एकता स्थापित करना तथा भगवान राम का बखान करते हुए सत्याग्रह का प्रचार।

इसी तरह बहुत सारे मामलों में नीची समझी जाने वाली जातियों की पंचायतों ने भी अपने खाने-पीने पर तथा काम-काज के तरीकों पर रोक लगाना शुरू कर दिया; जैसे उनकी औरतें अब ज़मींदारों के घर में काम करने नहीं जाएंगी या मर्द लोग ज़मींदारों के यहां बेगार नहीं करेंगे। उदाहरण के लिए गोरखपुर से निकलने वाला एक हिन्दी अखबार *स्वदेश* 6 फरवरी 1921 को लिखता है कि बस्ती के मेहतरों, धोबियों और नाइयों ने 27 जनवरी 1921 को अपनी-अपनी बिरादरी की पंचायतों में यह

फैसला किया कि अगर उनमें से कोई मांस, मछली या शराब का सेवन करेगा तो बिरादरी उसे सज़ा देगी और साथ ही उसे 51 रुपए गौशाला के लिए चंदा देना पड़ेगा। उन्होंने यह भी फैसला किया कि वे उन सभी जजमानों के यहां भी काम नहीं करेंगे जो इन चीज़ों का सेवन करते हैं। इन पंचायतों में हुए फैसलों का बड़ी कड़ाई से पालन किया जाता था। सामाजिक रूप से अशुद्ध समझी जाने वाली इन जातियों की, इस प्रकार अपने आप को 'शुद्ध' करने की यह कोशिश एक प्रकार से उनकी अपनी पराधीनता को नकारने की प्रक्रिया दिखती है।

गांधी बाबा के चमत्कार

1920 के बाद गोरखपुर ज़िले के गांवों में 'गांधी पंचायत' भी काफी देखने को मिलने लगी थी। ये पंचायत न केवल एक बिरादरी की बल्कि पूरे गांव की होती थी और इनके मुद्दे भी ज़्यादा व्यापक होते थे।

1921 के बाद इसके साथ एक और खास बात जुड़ गई। वह यह कि इन पंचायतों द्वारा अपराधी करार दिए गए व्यक्तियों को अगर किसी भी कारण किसी किस्म का कष्ट या मानसिक पीड़ा होती थी तो उसे 'गांधी बाबा' का चमत्कार समझा जाने लगा – कि 'गांधी बाबा' उसे उसकी करनी की सज़ा दे रहे हैं। इतना ही नहीं उन दिनों गांवों में कुछ भी अनहोनी या आश्चर्यजनक घटना होती थी तो उसे गांधीजी का चमत्कार मान लिया जाता था और उसकी चर्चा स्थानीय अखबारों तक में होती थी। उदाहरण के लिए मार्च 1921 के एक अंक में *स्वदेश* अखबार ने ऐसी चमत्कारिक घटनाओं का ज़िक्र किया है। एक गांव में लोगों ने देखा कि अचानक सभी कुंओं से धुआं निकलने लगा है, जब उन्होंने उनका पानी पीकर देखा तो उससे केवड़े की खुशबू आ रही थी। किसी दूसरे गांव में एक घर करीब एक वर्ष से बंद पड़ा था। जब उसे खोला गया तो उसमें पवित्र कुरान की एक प्रति रखी मिली। एक जगह एक अहीर ने एक साधु को, जो गांधीजी के नाम पर भिक्षा मांग रहा था, भिक्षा देने

गांधी पंचायतों द्वारा अपराधी करार दिए गए व्यक्तियों को अगर किसी भी कारण किसी किस्म का कष्ट या मानसिक पीड़ा होती थी तो उसे 'गांधी बाबा' का चमत्कार समझा जाने लगा – कि 'गांधी बाबा' उसे उसकी करनी की सज़ा दे रहे हैं।

से इंकार कर दिया तो उसका सारा गुड़ और दो बैल आग में जल कर खत्म हो गए; और एक ब्राह्मण गांधीजी की प्रभुता स्वीकार न करने के कारण पागल हो गया और तभी ठीक हो सका जब उसने गांधीजी के नाम का जाप शुरू कर दिया।

इस किस्म की पचासों कहानियां उन दिनों गोरखपुर के गांवों में प्रचलित थीं। इनमें कितनी सच्चाई थी ये तो कोई भी समझ सकता है मगर इन अफवाहों का गांवों की जनता पर बड़ा असर पड़ता था। कांग्रेस के स्थानीय नेताओं को भी इससे ग्रामीण जनता को, गांधीजी के नाम पर संगठित करने में काफी मदद मिली। अब वे किसी सभा का भी आयोजन करते थे, तो उसे 'गांधी सभा' का नाम दे देते थे और उसमें अपने आप काफी भीड़ जमा हो जाती।

मगर इन कहानियों या अफवाहों और गांधीजी के बढ़ते प्रभाव के कारण इस इलाके के ज़मींदार लोग काफी परेशान थे। सर्वप्रथम तो इसने इन ग्रामीण इलाकों में एकता बनाई थी जिसके कारण लोग ज़मींदारों की हुक्मउदुली ही नहीं बल्कि उनके अधिकार क्षेत्र पर हमला भी करने लगे थे।

गोरखपुर से प्रकाशित, ज़मींदारों के पक्षधर अखबार *'ज्ञान शक्ति'* ने अप्रैल 1921 में लिखा कि सभी गांवों में रात के समय लोग ढोल, ताशा और मजीरा लेकर निकलते हैं और कम-से-कम पांच गांवों में घूम-घूमकर गांधीजी के गीत गाते हैं और नारेबाजी करते हैं। इस काम को वे 'स्वराज का डंका' बजाना कहते हैं और अपनी यात्रा के दौरान लोगों को बताते हैं कि अंग्रेज़ों ने गांधीजी से यह शर्त लगाई थी कि अगर वो आग से बिना जले निकल कर दिखा दें तो उन्हें स्वराज मिल जाएगा। गांधीजी ने एक बछड़े की पूंछ पकड़कर बिना जले आग को पार कर लिया, इसलिए अब स्वराज आ गया है। गांधीजी के स्वराज में केवल चार आना और आठ आना प्रति बीघा की दर से लगान लगेगा। अतः कोई भी व्यक्ति इससे ज़्यादा लगान ज़मींदारों को न दे। ज्ञान शक्ति अखबार ने आगे चिंता जताई कि ऐसी हरकतों से स्वराज आने में देरी होगी और 'देश' का बड़ा नुकसान होगा।

हालांकि ये सारी बातें कांग्रेस के स्थापित विचारों और कार्यक्रमों के विपरीत थीं, मगर फिर भी कांग्रेस नेतृत्व इन ग्रामीणों को स्वराज पाने की स्थिति में अपने लिए, एक आदर्श शासन की कल्पना करने से रोक नहीं पाया। इन ग्रामीणों के लिए शासन या दमन के स्थापित प्रतिनिधियों को उखाड़ फेंकना ही स्वराज था।

उदाहरण के तौर पर चौरी-चौरा

थाने के थानेदार के घर के नौकर सरजु कहार ने बाद में मुकदमे के दौरान कोर्ट को यह बताया था कि घटना के दो-चार दिन पहले उसने लोगों को यह कहते हुए सुना था कि – 'गांधी महात्मा का स्वराज आ गया है और अब चौरा थाने को बंद कर दिया जाएगा। उसकी जगह वालेंटियर (स्वयंसेवक) लोग अपना थाना खोलेंगे।' इसके अतिरिक्त मांगपट्टी गांव के हरवंश कुर्मी ने यह बताया कि – 'उसके गांव के नारायण, बालेश्वर और चमरू ने उस घटना के बाद उसे बताया कि उन लोगों ने चौरा थाने को जला दिया है और अब स्वराज आ गया है।' ऐसा ही बयान उसी गांव के फेंकु चमार ने भी कोर्ट में दिया था।

गांधीजी गोरखपुर में

ऐसे ही आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक माहौल में 8 फरवरी 1921 को गांधीजी ने गोरखपुर का दौरा किया। अखबार *स्वदेश* के अनुसार "गांधीजी जिस ट्रेन से गोरखपुर आ रहे थे वो हर स्टेशन पर रुकती थी जहां हज़ारों की संख्या में लोग उनके दर्शन को खड़े रहते थे। ये लोग न केवल गांधीजी के दर्शन करना चाहते थे बल्कि उन्हें कुछ भेंट (रुपए, पैसे आदि) भी देना चाहते थे। मगर उन्हें कहा जा रहा था कि वो ये भेंट गोरखपुर में दें। चौरी-चौरा स्टेशन पर एक व्यक्ति उन्हें कुछ देने में सफल हो गया। उसके बाद तो लोगों को रोकना मुश्किल था। वहीं प्लेटफार्म पर एक चादर बिछा दी गई जिस पर लोगों ने रुपए-पैसों की बरसात कर दी।" किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि चौरी-चौरा जैसे साधारण स्टेशन से इस कदर पैसे इकट्ठे होंगे।

गोरखपुर में गांधी जी की सभा में करीब 2.5 लाख लोग उपस्थित थे जिनमें बहुत सारे चौरा थाना के आस-पास के गांवों के भी थे। गांधीजी ने अपने भाषण में अंग्रेज़ी शासन से असहयोग करने के अलावा छह अन्य मुख्य बातों पर ज़ोर दिया –

1. हिन्दु-मुस्लिम एकता।
2. लोगों को क्या नहीं करना है – लाठी का प्रयोग, हाट-बाज़ार की लूट, सामाजिक बहिष्कार।
3. अपने अनुयायियों से यह अपेक्षा कि वे जुआ खेलना छोड़ देंगे, गांजा- शराब नहीं पीएंगे, वेश्यायों के पास नहीं जाएंगे।
4. वकील और मुख्तार अपनी प्रैक्टिस छोड़ देंगे, सरकारी स्कूलों का बायकाट किया जाए, सरकारी उपाधियां छोड़ दी जाएं।
5. लोग सूत कातना शुरू करें और बुनकर सिर्फ हाथ का बना सूत ही लें।
6. स्वराज का मिलना हमारी संख्या,

गांधी जी की गोरखपुर यात्रा ने वहां एक ऐसी राजनैतिक चेतना को जन्म दिया जिसने शताब्दियों से अक्षुण्ण रहे शक्ति संबंधों जैसे अंग्रेज़–हिन्दुस्तानी, ज़मींदार–किसान, ऊंची जाति –नीची जाति आदि को पलटना शुरू कर दिया।

आंतरिक मज़बूती, भगवान का आशीर्वाद, शांति, त्याग आदि पर निर्भर है।

ऐसी ही बातें गांधीजी उत्तर प्रदेश और बिहार की अन्य सभाओं में भी कहते आ रहे थे। दरअसल इस आंदोलन के दौरान कई जगहों पर लूटमार और आगजनी की घटनाएं हो चुकी थीं। मिसाल के तौर पर बिहार के दरभंगा, मुज़फ्फरपुर और संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के रायबरेली, सुल्तानपुर, फैज़ाबाद आदि ज़िलों में कई स्थानों पर हाट-बाज़ार लूट लिए गए थे और सरकारी संपत्ति को नुकसान पहुंचाया गया था। ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए ही गांधी जी अपनी सभाओं में ऐसी बातों पर ज़ोर देते थे। इनका लोगों पर दरअसल कितना असर हुआ, वो आगे की घटनाओं से ही पता चलता है।

गांधीजी की गोरखपुर यात्रा ने वहां के राजनैतिक जीवन में एक नई जान, एक नया उत्साह भर दिया। 13 फरवरी, 1921 को *स्वदेश* में छपी एक कविता को देखें:

जान डालेगा यहां आप का आना अब तो,
लोग देखेंगे कि बदला है ज़माना अब तो।
आप आए हैं यहां जान ही आयी समझो,
गोया गोरख ने धुनी फिर है रमायी समझो।

उनके आने का उत्साह, उनके आने से जगी उम्मीदें तथा उनके द्वारा किए गए अंग्रेज़ी शासन पर प्रहार ने वहां स्थानीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों के साथ मिलकर एक ऐसा माहौल पैदा कर दिया था जिससे वहां की साधारण जनता के जीवन पर बड़ा फर्क पड़ा। गांधी जी की यात्रा ने वहां एक ऐसी राजनैतिक चेतना को जन्म दिया जिसने शताब्दियों से अक्षुण्ण रहे शक्ति संबंधों जैसे अंग्रेज़-हिन्दुस्तानी, ज़मींदार-किसान, ऊंची जाति - नीची जाति आदि को पलटना शुरू कर दिया।

घटना की पृष्ठभूमि

जनवरी 1921 के मध्य में ही चौरा थाना से एक मील की दूरी पर स्थित छोटकी डुमरी गांव में कांग्रेस वालंटियरों के एक मण्डल (ग्रामीण इकाई) की स्थापना हो चुकी थी,

वालंटियरों की भर्ती में बहुत तेज़ी नहीं आई थी। असहयोग आंदोलन को मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन के साथ मिला देने का गांधीजी का निर्णय यहां संगठनात्मक रूप से काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। अब बड़ी संख्या में मुसलमान इस राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने लगे।

जनवरी 1922 में चौरा के लाल मुहम्मद सांई ने गोरखपुर कांग्रेस खिलाफत कमेटी के एक कार्यकर्ता हकीम आरीफ को डुमरी मण्डल के लोगों को संबोधित करने के लिए बुलाया। हकीम आरिफ ने लोगों से कहा कि वे रुई की खेती करें, उसका सूत कातें और उससे बने कपड़े पहनें। उन्होंने लोगों से आपस के झगड़े आपस में ही सुलझा लेने को कहा और थाना या ज़मींदार के पास जाने से मना किया। उन्होंने ताड़ी या शराब पीने को भी मना किया और यह भी कहा कि स्वराज मिल जाने के बाद लोगों को केवल चार और आठ आना प्रति बीघे की दर से लगान देना पड़ेगा। हकीम आरिफ ने डुमरी मंडल के लिए कुछ पदाधिकारियों की भी नियुक्ति की। लाल मुहम्मद सांई को सचिव नियुक्त किया गया, भगवान बनिया को उपसचिव तथा खज़ांची, मीर शिकारी को संयुक्त सचिव और नज़र अली को उप संयुक्त सचिव नियुक्त किया। उसके बाद वे सभी कार्यकत्ताओं को 'चंदा' और 'चुटकी' जमा करते रहने का आदेश देकर चले गए। ('चंदा' तो आज भी काफी प्रचलित तरीका है पैसे जमा करने का, मगर 'चुटकी' का चलन अब नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय गांधीजी ने सभी देशवासियों को यह सलाह दी थी कि वे अपने रोज़ के खाने के अनाज में से एक मुट्ठी अनाज देश के लिए निकालें। इसे कांग्रेस के स्वयंसेवक घर-घर घूमकर इकट्ठा करते थे। इसे ही 'चुटकी' कहते थे।इस तरह जमा किया गया अनाज आंदोलन के समय स्वयंसेवकों के काम आता था।)

हकीम आरिफ के जाने के अगले दिन से स्वयंसेवक बनाने का काम शुरू कर दिया गया। सरकारी गवाह मीर शिकारी के अनुसार, "दूसरे ही दिन उसने 8-9 लोगों को वालंटियर बनाया जिनमें चिंगी तेली, बिहारी पासी, फेंकु पासी, सुखदेव पासी, बिन्देश्वरी सैन्थवार, जंगी अहीर, दुधई चमार आदि शामिल थे।" इस काम में उसका साथ दिया 10-12 वर्ष के लड़के नकछेद ने। नकछेद स्कूल जाने वाला लड़का था और शिकारी ने उसे अपने साथ इसलिए रखा कि वह खुद अनपढ़ था और 'प्रतिज्ञा पत्र' भरने का काम नहीं कर सकता था। वालंटियर बनाने के अलावा दूसरा महत्वपूर्ण काम जो इन कार्यकर्त्ताओं ने अपने हाथ में लिया वो था मांस, मछली, शराब और

फोटोग्राफ: 1. लाल मुहम्मद सांई और काज़ी की यह तस्वीर सितंबर 1922 की है जब वे एक सुनवाई के दौरान कोर्ट के बरामदे में खड़े थे। 2. चौरी-चौरा कांड के लिए दोषी पाए गए गांव वाले कोर्ट परिसर में एक जिरह के दौरान।
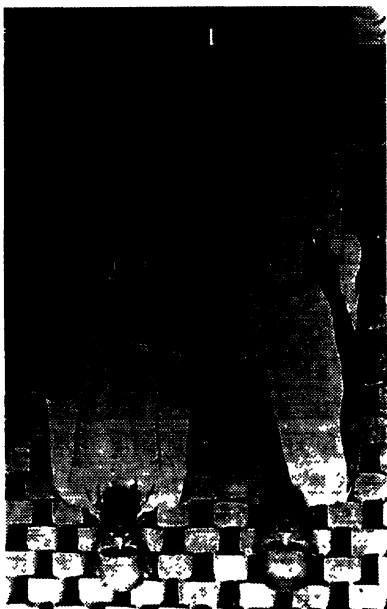
विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर पिकेटिंग करने का। 4 फरवरी, 1922 को हुई पुलिस से मुठभेड़ इसी कार्य की परिणिति थी।

4 फरवरी की घटना से करीब 10-12 दिन पहले डुमरी मण्डल के 30-35 वालंटियरों ने मुण्डेरा बाज़ार में पिकेटिंग की। पिकेटिंग के दौरान उनका ज़्यादा ध्यान मांस और मछली बेचने वालों की दुकानों पर था। इसलिए नहीं कि इनकी बिक्री रोकना कांग्रेस के कार्यक्रम में था बल्कि इसलिए कि 'दुकानदार मांस, मछली मंहगी बेच रहे थे' और वो चाहते थे कि उसकी कीमत कम हो। थोड़ी ही देर की पिकेटिंग के बाद बाज़ार के मालिक संत बक्स सिंह के एक कारिंदे ने उन्हें पिकेटिंग बंद कर बाज़ार से जाने को कह दिया और उन्हें जाना पड़ा। इस बार की असफलता के बाद वालंटियरों ने यह फैसला किया कि अगली बार वे ज़्यादा संख्या में आएंगे और कारिंदे की बात नहीं मानेंगे।

इस समय तक वालंटियरों की संख्या 300 से ज़्यादा तक पहुंच चुकी थी और उनका शारीरिक प्रशिक्षण (ड्रिल आदि) भी शुरू हो चुका था। प्रशिक्षण की ज़िम्मेदारी ली थी एक रिटायर्ड फौजी भगवान अहीर ने। भगवान अहीर प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों की तरफ से इराक में लड़ा था और कवायद करना-कराना जानता था।

मुख्य घटना से करीब चार दिन पहले कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने डुमरी में एक बड़ी सभा की। सभी वालंटियरों को यह निर्देश दिया गया कि अपने साथ काफी लोगों को लेकर आएं – "अन्यथा भीड़ कम होने पर पुलिस उनकी पिटाई कर सकती है या उन्हें गिरफ्तार कर सकती है।" अब उन्हें भीड़ की शक्ति का अंदाज़ा हो चुका था। शायद उन्हें संयुक्त प्रांत के अवध क्षेत्र के ज़िलों (रायबरेली, सुल्तानपुर, फैज़ाबाद, बाराबंकी आदि) में चल रहे किसान आंदोलनों की जानकारी होगी जहां कई हज़ारों किसानों की भीड़ ने जुलूस और धरने आदि के द्वारा सरकारी कर्मचारियों को झुकने पर मजबूर कर दिया था।

उक्त सभा में करीब 4000 लोग उपस्थित थे। गोरखपुर से आए कुछ नेताओं ने अपने भाषण में गांधीजी और मुहम्मद अली का गुणगान किया और लोगों से उनकी बताई राह पर चलने का आग्रह किया। सभा के बाद एक बड़े से चरखे के साथ जुलूस निकाला गया जो तहसील दफ्तर, थाना और बाज़ार में घूमा। किसी ने उन्हें रोकने-टोकने की कोशिश नहीं की।

इस सभा और जुलूस की सफलता से उत्साहित होकर डुमरी के कार्यकर्त्ताओं ने दूसरे दिन यानी 1 फरवरी, बुधवार को फिर से मुण्डेरा बाज़ार में पिकेटिंग करना तय किया।

उस दिन करीब 60-65 वालण्टियर नज़र अली, लाल मुहम्मद सांई और मीर शिकारी के नेतृत्व में मुण्डेरा बाज़ार पहुंचे। मगर बाज़ार के अन्दर जाने से पहले ही संत बक्स सिंह के आदमियों ने उन्हें डांट-डपट कर भगा दिया। फिर भी वहां से वापस जाने से पहले इन कार्यकर्त्ताओं ने उन कारिंदों को यह चेतावनी दे डाली कि शनिवार को वे और ज़्यादा लोगों के साथ आएंगे और तब उनसे बात करेंगे।

उसी दिन शाम को आगे का कार्यक्रम तय करने के लिए मीर शिकारी के घर पर एक मीटिंग बुलाई गई। मीटिंग शुरू ही हुई थी कि भगवान अहीर, रामरूप बरई और महादेव आए और बताया कि जब वे बाज़ार में अकेले ही पिकेटिंग कर रहे थे तो दारोगा गुप्तेश्वर सिंह ने उनकी काफी पिटाई की। इस घटना ने आग पर घी का काम किया और सभी ने यह फैसला किया कि दूसरे वालण्टियर मण्डलों को चिट्ठी लिखकर बुलाया जाए और सबके साथ जाकर दारोगा से पूछ-ताछ की जाए कि उसने उनके आदमियों की पिटाई क्यों की। उन सबके मन में यह संकल्प था कि जिस प्रकार दारोगा ने उनकी पिटाई की है उसी प्रकार दारोगा की भी पिटाई होनी चाहिए।

दूसरे दिन फिर से नकछेद की सहायता ली गई और विभिन्न मण्डलों के लिए पांच चिट्ठियां लिखवाई गईं। सारी बातें बताने के बाद उन सभी से यह आग्रह किया गया कि वे शनिवार की सुबह डुमरी में बिहारी पासी के घर के सामने के खलिहान में कम-से-कम 100-150 लोगों के साथ जमा हों। फिर उस सभा के लिए तैयारियां की गईं। लोगों के लिए गुड़-पानी का इंतज़ाम किया गया, बैठने के लिए बोरे और नेताओं के स्वागत के लिए फूल-मालाएं भी मंगवाई गईं।

शनिवार यानी चार फरवरी को सुबह आठ बजे ही 800 से ज़्यादा लोग खलिहान में जमा हो चुके थे। मीटिंग शुरू हो गई और इस बात पर गर्मागरम बहस शुरू हो गई कि बदला कैसे लिया जाए। इधर दारोगा (थानेदार) गुप्तेश्वर सिंह भी बेखबर नहीं था। उसे अपने मुखबिरों से यह खबर मिल चुकी थी कि मीटिंग में कुछ खास फैसले लिए जा सकते हैं। इसलिए उसने गोरखपुर से अतिरिक्त पुलिस बल के रूप में 'बंदूकधारी सिपाही' बुला लिए थे। उसने मीटिंग में लोगों को कोई आक्रामक फैसला लेने से रोकने के लिए अपने कुछ आदमियों को भी भेजा। मगर लोगों ने उनकी एक न सुनी और यह फैसला किया कि वे दारोगा से जवाब तलब करेंगे और मुण्डेरा बाज़ार भी बंद कराएंगे। इस कार्य में आने वाले खतरों

कागज़ातों में डुमरी मण्डल के वालंटियरों के 'प्रतिज्ञा पत्र' भी थे जिनके आधार पर पुलिस ने गिरफ्तारियां की। महीने भर के अंदर लगभग सारे प्रमुख वालंटियर पकड़े गए।

पुलिस रिपोर्टों के अनुसार इस दंगे में करीब 6000 लोग शामिल थे जिनमें से एक हज़ार से पूछताछ की गई और आखिर में 225 पर मुकदमा चलाया गया। वालंटियरों का एक प्रमुख नेता मीर शिकारी सरकारी गवाह बन गया और उसके बयान के आधार पर गोरखपुर के डिस्ट्रिक्ट जज एच. ई. होम्स ने 9 जनवरी, 1923 को 172 लोगों को फांसी की सज़ा सुनाई और 50 को बरी कर दिया (3 की मौत मुकदमे की सुनवाई के दौरान हो गई थी)। मगर इलाहाबाद हाई कोर्ट ने अपने 30 अप्रैल, 1923 के फैसले में 110 लोगों की फांसी की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दिया, 38 को बरी कर दिया और केवल 19 की फांसी की सज़ा को बहाल रखा।

दंगे के तुरंत बाद पुलिस की ही तरह गोरखपुर कांग्रेस खिलाफत कमेटी के लोग भी हरकत में आए। उन्होंने एक आपात बैठक बुलाई और चौरा थाना के आसपास के गांवों के वालंटियर मण्डलों को भंग कर दिया और अपने आपको इस घटना से बिल्कुल अलग कर लिया। इधर गांधीजी ने अपने बेटे देवदास गांधी को अपने विशेष दूत के रूप में घटना की पूरी जानकारी के लिए चौरी-चौरा भेजा। मगर प्रशासन ने उन्हें चौरी-चौरा जाने से रोक दिया।

12 फरवरी, 1922 को गांधीजी ने असहयोग आंदोलन वापसी की घोषणा कर दी। दरअसल पिछले कुछ महीनों से देश के बाकी हिस्सों में आंदोलन ठंडा पड़ता जा रहा था और ऐसी स्थिति में जब कि गांधीजी ने देश को एक वर्ष के अंदर स्वराज दिलाने का वादा कर रखा था और स्वराज मिलने के कोई आसार दिखाई नहीं पड़ रहे थे, इस आंदोलन को वापस लेने का इससे अच्छा अवसर और कोई नहीं हो सकता था। मगर 16 फरवरी 1922 को लिखे अपने लेख 'चौरी-चौरा का अपराध' में गांधीजी ने आंदोलन को वापस लेने का कारण देश का किसी भी अहिंसक आंदोलन छेड़ने के लिए तैयार न होना बताया। उनके अनुसार अगर ये आंदोलन वापस न लिया जाता तो दूसरी जगहों पर भी ऐसी घटनाएं होतीं।

गांधीजी ने अपने लेख में एक ओर तो इस घटना के लिए पुलिस वालों को ज़िम्मेदार ठहराया क्योंकि "उनके ही उकसाने पर भीड़ ने ऐसा कदम उठाया था।" दूसरी तरफ इस घटना में शामिल तमाम लोगों को अपने-

आपको पुलिस के हवाले करने की सलाह दी – क्योंकि उन्होंने अपराध किया था।

उधर गोरखपुर में बैठे देवदास गांधी ने मृत पुलिस वालों के परिवारों की सहायता के लिए एक 'चौरी-चौरा सहायता कोष' की स्थापना की और संयुक्त प्रांत (यू.पी.) की तमाम ज़िला कांग्रेस कमेटियों को आदेश दिया कि इस कोष के लिए दो-दो हज़ार रुपए जमा करें। गोरखपुर ज़िले को सज़ा स्वरूप दस हज़ार रुपए जमा करने थे। इस सहायता कोष से मृत या सज़ा-याफ्ता वालंटियरों के परिवार वालों को कुछ भी नहीं मिलना था क्योंकि 'उन्होंने अपराध किया था।'

आंदोलन के प्रणेता होने के कारण थोड़ा-बहुत दायित्व गांधीजी का भी था, जिसे उन्होंने स्वीकारा भी और इसके प्रायश्चित के लिए पांच दिनों का उपवास रखा। लेकिन चौरी-चौरा कांड के सज़ायाफ्ता वालंटियरों के परिवार वालों का भूल सुधार तो सारी ज़िंदगी चलता रहा।

गौतम पाण्डेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।

संदर्भ सामग्री:

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर शहिद अमीन की पुस्तक Event, Mataphor, Memory: Chauri Chaura, 1922-1992, Oxford University Press (OUP), New Delhi 1995
और उनके लेखों, Small Peasant Commodity Production and Rural Indebtedness: The Culture of Sugar cane in Eastern U.P. 1880-1920, Subaltern Studies (SS), Vol.. I, OUP, New Delhi, 1982; Gandhi As Mahatma: Gorakhpur District, Eastern U.P. 1921-2, SS, Vol . III, OUP, New Delhi, 1984 और Approver's Testimony, Judicial Discourse: The Case of Chauri Chaura, SS, Vol.. V, OUP, New Delhi 1987,
और प्रोफेसर ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के लेख Peasant Revolt and Indian Natioanlism: The Peasant Movement in Awadh, 1919-22, SS, VOl.. I, OUP, New Delhi, 1982 पर आधारित।
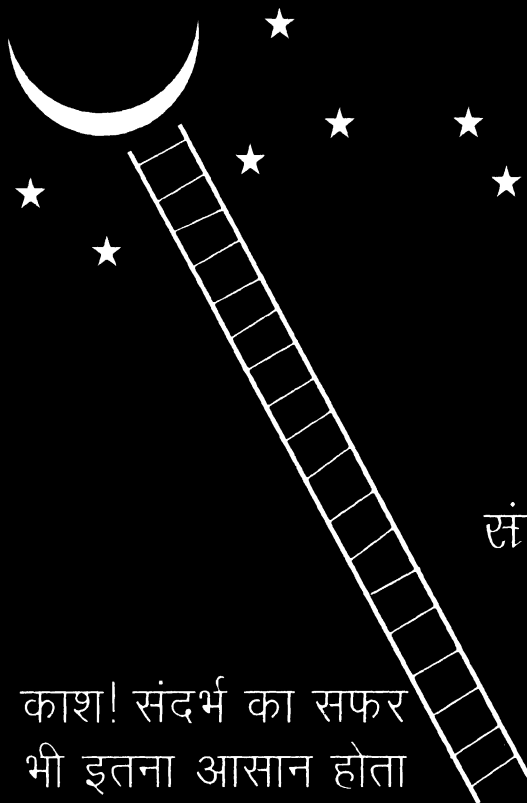
संदर्भ के अंक 31-36 का सजिल्द संस्करण उपलब्ध है। अन्य सभी सजिल्द संस्करण भी उपलब्ध। प्रत्येक का मूल्य 65 रुपए। डाक खर्च सहित। संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र, 461001
फोन: 07574 - 53518

एकलव्य
ई - 1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

वर्ष 6: अंक 31 से 36

अंक 31, अप्रैल–मई 2000

आपने लिखा	4	लोग और उनकी सोच . . .	47
सूचक	9	हृदय एक पंप . . .	51
वर्नियर का सिद्धांत	16	शुल्व सूत्र में रेखागणित . . .	61
डी. एन. ए. से प्रोटीन . . .	21	जादुई गुब्बारा	74
ज़रा सिर तो खुजलाइए	28	बच्चे और उनके खिलौने	77
सावन का महीना . . .	31	अनारको और चोर अंकल	83

अंक 32, जून–जुलाई 2000

आपने लिखा	4	चंद्रशेखर वेंकट रामन	49
शौकिया वैज्ञानिक	5	भाषा, अनुभव और विज्ञान	63
नेपच्यून की खोज	17	ज़रा सिर तो खुजलाइए	74
स्कूली किताबों की भाषा	30	नाप जोखकर वेदियां . . .	75
लैंगिक द्विरूपता	35	सोने के दांत वाला सांप	87

अंक 33, अगस्त–सितंबर 2000

आपने लिखा	4	तौबा! ये मतवाली चाल	44
बच्चे और जंग	11	ज़रा सिर तो खुजलाइए	58
हवाई फूल बनाम भूमिगत	15	बंगाल में इस्लाम . . .	63
पानी की कठोरता . . .	29	नाप जोख के लिए . . .	85
परिधि का त्रिज्या से संबंध	35	दस हज़ार साल बाद . . .	95

अंक 34, अक्टूबर–नवंबर 2000

आपने लिखा 6
सूरज पर धब्बे . . . 9
सवालीराम 25
वे दौड़ते-दौड़ते . . . 27
क्या बताती हैं . . . 38
ज़रा सिर तो खुजलाइए 46
80 दिन में . . . 47
प्रमेयों की गुत्थियां . . . 63
बंगाल में इस्लाम . . . 75
कांटों का घरौंदा 93

अंक 35, दिसंबर 2000–जनवरी 2001

आपने लिखा 4
उबलते पानी के . . . 9
पढ़ाने का वो तरीका 21
ज़रा सिर तो खुजलाइए 26
तितलियों में रंग . . . 27
सवालीराम 42
80 दिन में . . . 45
चितियों का निर्माण . . . 61
बंगाल में इस्लाम . . . 75
संतान की परवरिश . . . 97

अंक 36, फरवरी–मार्च 2001

आपने लिखा 4
बृहस्पति के उपग्रह. . . 7
श्रुतलेखन . . . 18
क्या इंसान भी . . . 25
व्हाय टोस्ट लैंड्स . . . 33
सवालीराम 41
80 दिन में . . . 43
ज़रा सिर तो खुजलाइए 58
कुछ ईंटें, कुछ प्रमेय 59
कहानी चौरी-चौरा की 69
इंडेक्स 87
मकड़ी के जाले 93

इंडेक्स देखने का तरीका: छह अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थान पर रखे गए हैं। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का क्रमांक है जिसमें वह लेख प्रकाशित हुआ है। फुलस्टाप के बाद उस लेख का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है। उदाहरण के लिए लेख 'वर्नियर का सिद्धांत' अंक 31, पृष्ठ क्रमांक 16 पर।

भौतिकी (Physics)

वर्नियर का सिद्धांत	विनोद कुमार गुप्ता	31.16
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	31.28
सावन का महीना . . .	प्रदीप गोठोस्कर	31.31
जादुई गुब्बारा	चंपालाल कुशवाहा	31.74
नेपच्यून की खोज	कमल लोडाया, वेंकटेश्वरन	32.17
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	33.58
सूरज पर धब्बे . . .	टी. वेंकटेश्वरन	34.09
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	34.46
तितलियों में रंग मज़ेदार	सुशील, प्रियदर्शिनी कर्वे	35.27
सवालीराम	–	35.42
बृहस्पति के उपग्रह . . .	माधव केलकर	36.07
व्हाय टोस्ट लैंड्स . . .	प्रियदर्शिनी कर्वे	36.33

रसायन शास्त्र (Chemistry)

सूचक	सुशील जोशी	31.09
पानी की कठोरता . . .	सुशील जोशी	33.29
सवालीराम		36.41

प्राणी शास्त्र (Zoology)

डी. एन. ए. से प्रोटीन . . .	पूर्णिमा भार्गव	31.21
शौकिया वैज्ञानिक	रिचर्ड पी. फाइनमेन	32.05

लैंगिक द्विरूपता	अरविंद गुप्ते	32.35
तौबा! ये मतवाली चाल	मुकेश इंगले	33.44
सवालीराम	–	34.25
वे दौड़ते-दौड़ते . . .	अरविंद गुप्ते	34.27
कांटो का घरौंदा	के. आर. शर्मा	34.93
सवालीराम	–	35.42
संतान की परवरिश . . .	के. आर. शर्मा	35.97
क्या इंसान भी . . .	जे. बी. एस. हाल्डेन	36.25
मकड़ी के जाले . . .	आमोद कारख्वानिस	36.93

वनस्पति शास्त्र (Botany)

हवाई फूल बनाम भूमिगत फूल	वीणु कौल, ए. के. कौल, एम. सी. शर्मा	33.15
दस हज़ार साल बाद	– –	33.95

विकास (Evolution)

वे दौड़ते-दौड़ते उड़ने लगे . . .	अरविंद गुप्ते	34.27

जंतु व्यवहार (Animal Behavior)

शौकिया वैज्ञानिक	रिचर्ड पी. फाइनमेन	31.05
मकड़ी के जाले	आमोद कारख्वानिस	36.93

गणित (Math)

वर्नियर का सिद्धांत	विनोद कुमार गुप्ता	31.16
शुल्व सूत्र में रेखागणित . . .	रामकृष्ण भट्टाचार्य	31.61
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	32.74
नाप जोखकर वेदियां बनाना	रामकृष्ण भट्टाचार्य	32.75
त्रिज्या का परिधि से संबंध	जुई दधीच	33.35
नाप जोख के लिए . . .	रामकृष्ण भट्टाचार्य	33.85
प्रमेयों की गुत्थियां सुलझाना	रामकृष्ण भट्टाचार्य	34.63

ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	35.26
चितियों का निर्माण . . .	रामकृष्ण भट्टाचार्य	35.61
ज़रा सिर तो खुजलाइए	–	36.58
कुछ ईंटें, कुछ प्रमेय . . .	रामकृष्ण भट्टाचार्य	36.59

इतिहास (History)

बंगाल में इस्लाम . . .	रिचर्ड ईटन	33.63
बंगाल में इस्लाम . . .	रिचर्ड ईटन	34.75
बंगाल में इस्लाम . . .	रिचर्ड ईटन	35.75
कहानी चौरी-चौरा की	गौतम पाण्डेय	36.69

भूगोल/भूविज्ञान/खगोल (Geography/Geology/Astronomy)

नेपच्यून की खोज	कमल लोडाया, वेंकटेश्वरन	32.17
सूरज पर धब्बे . . .	टी. वी. वेंकटेश्वरन	34.09
उबलते पानी के चश्मे	संजय तिवारी	35.09
बृहस्पति के उपग्रह . . .	माधव केलकर	36.07

जीवनी

हृदय एक पंप है	–	31.51
चंद्रशेखर वेंकट रामन	–	32.49

बच्चों के साथ अनुभव

बच्चे और उनके खिलौने	कमलेश चंद्र जोशी	31.77
बच्चे और जंग	शुभदा जोशी	33.11
पढ़ाने का वो तरीका	नीलम भोंडे	35.21
श्रुतलेखन . . .	कमलेश चंद्र जोशी	36.18

पुस्तक अंश/पुस्तक समीक्षा

शौकिया वैज्ञानिक	रिचर्ड पी. फाइनमेन	32.05
क्या बताती हैं लोक कथाएं	कमलेश चंद्र जोशी	34.38
व्हाय टोस्ट लैंड्स . . .	प्रियदर्शिनी कर्वे	36.33

गतिविधि

जादुई गुब्बारा	चंपालाल कुशवाहा	31.74

कहानी (Story)

अनारको और चोर अंकल	सतीनाथ षडंगी	31.83
सोने के दांत वाला सांप	जे. बी. एस. हाल्डेन	32.87
80 दिन में दुनिया की सैर	ज्यूल्स वर्न	34.47
80 दिन में दुनिया की सैर	ज्यूल्स वर्न	35.45
80 दिन में दुनिया की सैर	ज्यूल्स वर्न	36.43

विविध

स्कूली किताबों की भाषा	उमेश चंद्र चौहान	32.30
भाषा, अनुभव और विज्ञान	अनुपम मिश्र	32.63
श्रुत लेखन . . .	कमलेश चंद्र जोशी	36.18

अन्य

लोग और उनकी सोच समझ	उमा अय्यर	31.47
श्रुत लेखन	कमलेश चंद्र जोशी	36.18
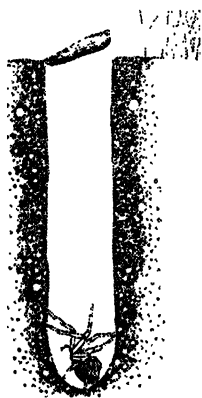
बचाव के अपने-अपने इंतज़ाम: आम धारणा यही है कि मकड़ियां सिर्फ ज़मीन के ऊपर जाले बनाकर उनमें ही रहती हैं। लेकिन कुछ मकड़ियां अपने बचाव के लिए न सिर्फ ज़मीन में ट्यूबनुमा छेद बनाकर उसमें रहती हैं बल्कि छेद का मुंह बंद करने की जुगत भी लगाती हैं।
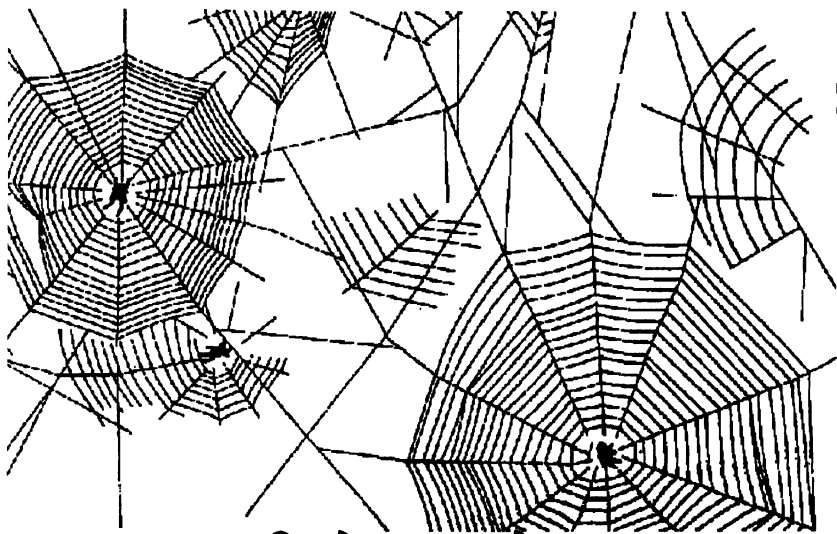
मकड़ी के जाले पर ओस की बूं

आमोद कारखानिस

किसी भी प्रकृति प्रेमी के लिए जाड़े के दिनों में सुबह खुले में घूमने जाना अक्सर खुशगवार साबित होता है। अगर रात काफी ठण्डी गुज़री हो तो आपको ओस की बूंदें दिखेंगी जो सूर्य की रोशनी में मोतियों की तरह चमकती नज़र आती हैं। यदि आपके पास कैमेरा हो तो आप ऐसा मौका नहीं चूकेंगे।

पिछले दिनों मैं मकड़ी के जाले का एक ऐसा फोटो खींचने की कोशिश कर रहा था जिस पर ओस की बूंदें हों। ओस की बूंदों के साथ उनके फोटो बहुत ही बढ़िया आते हैं क्योंकि वैसे जाला इतना महीन होता है कि स्पष्टतः दिखाई ही नहीं देता और आसपास की बैकग्राउंड में गुम हो जाता है। मुझे अचानक समझ में आया कि पूरा जाला ही मोतियों की माला की तरह चमक रहा था, मानो हज़ारों एक ही
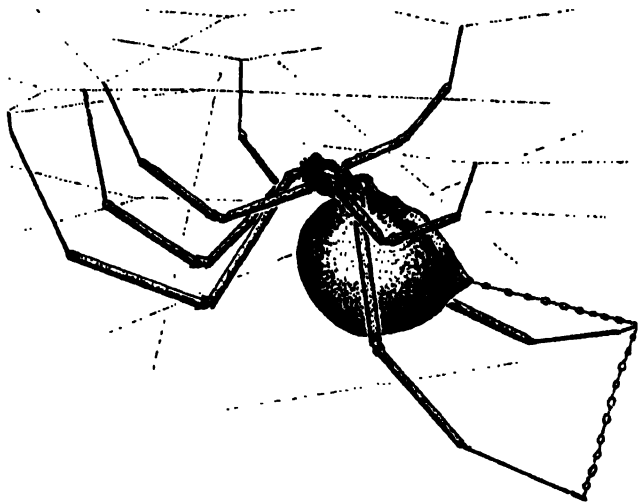
चिपचिपे द्रव की बूंदें: मकड़ी अपने जाल को बुनते समय ही चिपचिपे द्रव की बूंदों को बिछाते जाने का काम भी करती जाती है। ऊपर चित्र में 'ब्लैक-विडो' मकड़ी को जाला बुनते हुए दिखाया गया है जिसमें देखा जा सकता है कि मकड़ी जाला तो बुन ही रही है, साथ-साथ उस पर बूंदों की जमावट भी होती जा रही है। नीचे वाले चित्र में जाले के एक ताने का क्लोज़-अप है जिसमें चिपचिपे द्रव की व्यवस्थित जमी हुई बूंदें दिख रही हैं।

आकार के मोती उसमें टंगे हों और ये सब मोती जाले के तानों पर समान अंतराल पर लटकाए गए हों। मैं सोच में पड़ गया कि ये सब इस तरह अत्यन्त व्यवस्थित रूप से क्यों टंगे हुए हैं?

इससे अपने आपको बुरा भी लगा कि मैं इतने वर्षों से नियमित रूप से प्रकृति का अवलोकन और अध्ययन करता रहा हूं और आज कहीं जाकर मुझे मकड़ी के जाले पर टंगी ओस की बूंदों की यह व्यवस्था नज़र आई। पर फिर भी सवाल तो वहीं का वहीं मौजूद था कि आखिर यह पैटर्न क्यों?

जासूसों की तरह हम लोग इस पहेली को हल करने में जुट गए। पहला कदम तो यही था कि ध्यान से देखकर

सुराग खोजने की कोशिश करें। जुट जाने पर पहला सुराग हाथ लग ही गया। सब ओस की बूंदें जाले के गोलाकार (स्पायरल) धागों पर होती हैं, बीच से निकलने वाले लम्बवत धागों पर नहीं। यानी कि इन दो तरह के धागों में कुछ फर्क ज़रूर होना चाहिए।

स्पष्ट था कि फर्क उनकी दिशा की वजह से नहीं है क्योंकि ओस की बूंदें गोलाकार धागों पर हर जगह मौजूद होती हैं। इसलिए हमें यह खोजना होगा कि आखिर दोनों तरह के धागे कैसे बनाए जाते हैं। गोलाकार ताने शिकार को फंसाने के काम आते हैं जबकि सीधे-लम्बवत (रेडियल) धागे चिपचिपे नहीं होते, मकड़ी उनका इस्तेमाल चलने-फिरने के लिए करती है। जाला बनाने के लिए मकड़ी गाढ़ा द्रव बाहर निकालती है जो हवा से सम्पर्क में आने पर जल्दी से सूख कर सख्त हो जाता है। गोलाकार हिस्सों के लिए वो एक और पदार्थ स्रावित करती है जो चिपचिपा बना रहता है और जिसे सूखने में बहुत समय लगता है।

अगर ये गोंदनुमा चिपचिपा पदार्थ जल्दी सूख जाए तो वो शिकार फंसा नहीं पाएगी और उसे बार-बार जाले पर चिपचिपा पदार्थ पोतते रहना पड़ेगा। गोंदनुमा पदार्थ के सूखने की दर धीमी हो जाए इसलिए मकड़ी एक विशेष तरीका अपनाती है। जब मकड़ी जाले पर चिपचिपा पदार्थ स्रावित करती है तो यह ताने पर समान रूप से फैला होता है – ताने के ऊपर गोंद की एक नलाकार परत के रूप में। गोंद लगाते वक्त मकड़ी इस नलाकार को खींचकर जितना संभव हो उतना बारीक बनाने की कोशिश करती है ताकि कम-से-कम पदार्थ इस्तेमाल हो। वो इस चिपचिपे नलाकार को इस पदार्थ की टूटने की सीमा तक खींचती है, और फिर थोड़ा और खींचती है ताकि वो परत/झिल्ली टूट जाए। ऐसा करने पर गोंदनुमा पदार्थ की वो परत धागे के ऊपर एकदम महीन बूंदों में टूट जाती है।

गोंद की नलाकार सतह टूटने पर छोटे-छोटे मोतीनुमा गोले बन जाएंगे। अगर आयतन बराबर रखा जाए तो गोलाकार की सतह का क्षेत्रफल सबसे कम होता है। पृष्ठ तनाव (सतह के तनाव) की वजह से कोई भी द्रव गोले का आकार प्राप्त करने की कोशिश करता है। चूंकि गोले की सतह का क्षेत्रफल न्यूनतम होता है इसलिए यह वो आकार है जिसमें गोंद का वाष्पी-करण सबसे धीमा होगा; इसलिए उसे सूखने में अधिकतम समय लगेगा।

इसीलिए अगर गोंद की यह नलाकार परत छोटे-छोटे गोलों में बिखर जाए तो स्वाभाविक है कि मकड़ी

को फायदा होगा। कुछ प्रजातियों में एक खंड पर चिपचिपा पदार्थ लगाने के बाद दूसरा खंड शुरू करने से पहले मकड़ी धागे को हल्का-सा झटका देती है (जैसे हम सितार की तार को खींचते हैं) ताकि धागे में पैदा होने वाले कंपन से गोले बनने की प्रक्रिया में मदद मिले। चूंकि चिपचिपे पदार्थ के ये महीन गोले काफी पास-पास होते हैं इसलिए चिपचिपे नलाकार के गोलों में टूट जाने के बावजूद जाले की शिकार को फंसाने की क्षमता कतई कम नहीं होती।

जाड़े की सुबह जैसे-जैसे तापमान कम होता जाता है संतृप्त वाष्प दाब भी कम होता जाता है। इस वक्त हवा जितनी वाष्प संभाल सकती है उससे ज़्यादा वाष्प हवा में होती है इसलिए वो संघनित (कंडेस) होने लगती है। संघनित होने के लिए वाष्प को कोई सहारा चाहिए होता है (शुरुआती बिन्दु की ज़रूरत होती है), चाहे वो कोई धूल का कण हो या मकड़ी के जाले पर बना गोंद का गोला। वातावरण का पानी गोंद के गोले के इर्द-गिर्द जमा हो जाता है। यानी कि जाले पर बनी ओस की बूंदें, दरअसल जाले पर बने अत्यंत बारीक गोंद के गोलों का ही विस्तृत रूप हैं। जाले पर टंगे ये गोंद के गोले इतने छोटे होते हैं कि हमें नंगी आंखों से आसानी से दिखते भी नहीं हैं परन्तु ओस की बूंदें बन जाने के बाद वही मोतियों की माला की तरह नज़र आने लगते हैं।

एक साधारण-सा अवलोकन और उसके लिए भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र और गणित के इतने सारे नियमों की ज़रूरत। परन्तु सुन्दरता इसी में है कि ये सब आसान नियम हैं और बिना किन्हीं विशेष शोध उपकरणों के,केवल सूक्ष्म अवलोकनों के ज़रिए हमें ऐसी घटनाओं के पीछे छिपा कारण समझ में आ जाता है। कुदरत ऐसी घटनाओं से भरी पड़ी है, बस ज़रूरत है एक खोजी नज़र की।

आमोद कारखानिस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। शौकिया चित्रकार। प्रकृति प्रेमी हैं और विज्ञान लेखन में रुचि रखते हैं। बम्बई में रहते हैं।

टिटहरी ज़मीन पर ही रहती है और वहीं अंडे देती है, परन्तु ऐसी जगह चुनकर कि आप पास से निकल जाएं और फिर भी अंडे दिखाई न दें। फोटो – के. आर. शर्मा

12738